SURESH GYAN VIHAR UNIVERSITY
Accredited by NAAC with 'A+' Grade

Master of Arts

(Hindi)

छंद शास्त्र एवं काव्य शास्त्र (HNL-508)

Semester-I

Author- Sangita Tiwari

SURESH GYAN VIHAR UNIVERSITY

Centre for Distance and Online Education
Mahal, Jagatpura, Jaipur-302025

EDITORIAL BOARD (CDOE, SGVU)

Dr (Prof.) T.K. Jain
Director, CDOE, SGVU

Ms. Hemlalata Dharendra
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Ms. Kapila Bishnoi
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Mr. Ashphaq Ahmad
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Dr. Manish Dwivedi
Associate Professor & Dy, Director, CDOE, SGVU

Mr. Manvendra Narayan Mishra
Assistant Professor (Deptt. of Mathematics) SGVU

Published by:

S. B. Prakashan Pvt. Ltd.

WZ-6, Lajwanti Garden, New Delhi: 110046

Tel.: (011) 28520627 | Ph.: 9205476295

Email: info@sbprakashan.com | Web.: www.sbprakashan.com

© SGVU

All rights reserved.

No part of this book may be reproduced or copied in any form or by any means (graphic, electronic or mechanical, including photocopying, recording, taping, or information retrieval system) or reproduced on any disc, tape, perforated media or other information storage device, etc., without the written permission of the publishers.

Every effort has been made to avoid errors or omissions in the publication. In spite of this, some errors might have crept in. Any mistake, error or discrepancy noted may be brought to our notice and it shall be taken care of in the next edition. It is notified that neither the publishers nor the author or seller will be responsible for any damage or loss of any kind, in any manner, therefrom.

For binding mistakes, misprints or for missing pages, etc., the publishers' liability is limited to replacement within one month of purchase by similar edition. All expenses in this connection are to be borne by the purchaser.

Designed & Graphic by : S. B. Prakashan Pvt. Ltd.

Printed at :

विषय-सूची

इकाई 1

अज्ञेय 5

इकाई 2

रामधरी सिंह 'दिनकर' 22

इकाई 3

कालजयी - भवानी प्रसाद मिश्र 39

इकाई 4

पारम्परिक छंद 50

इकाई 5

आधुनिक छंद 87

vf/kxe ifj.kke (Learning out comes)

fo|kFkhZ le>u e l{ke gksxk

bdkbZ &1

- fo|kFkhZ ikjEifjd Nnk dk Kku ikIr dju e l{ke gksx
- o Nnk dh ifjHkk"kk dk v/;;u dj ldx
- og ikjEifjd Nnk dh fo'k'krkvk dk tku ik,x

bdkbZ &2

- fo|kFkhZ Nne;h jpuk dh fo'k"krkvk dk v/;;u dj ldx
- o vk/kfud Nnk dk Kku ikIr dj iku e l{ke gksx
- o dk0; e Nn d egRo dk le> ldx

bdkbZ &3

- fo|kFkhZ **vK;** d 0;fDrxr thou ,o ie[k dfrRo dk Kku ikIr dj ldx
- o vK; d dk0; e vk/kfud Hkko&ck/k dk v/;;u dj ldx
- og vIk/; oh.kk d o.; fo"k; dk Kku ikIr dj ldx

bdkbZ &4

- fo|kFkhZ jk"V dfo d :i e fnudj dk v/;;u dj ldx
- o d :{k= dk0; d iFke ,o f}rh; lx d ink dh 0;k[;k dj ldx
- o dfo fnudj d dk0; lkUn; dk Li'V dj ldx

bdkbZ &5

- fo|kFkhZ vk/kfud dfo Hkokuh iIkn feJ d 0;fDrxr ,o IkfgfR;d thou dk ifjp; ikIr dj ldx
- og lUukVk dfork dh ey lonuk dk tku ldx
- o xhr Qjk'k dfork d ek/;e l thou e u; Hkko ck/k dk v/;;u dj ldx

छंद शास्त्र एवं
काव्य शास्त्र
अध्ययन

इकाई 1

अज्ञेय

प्रस्तावना, जीवन परिचय, रचनाकार व्यक्तित्व, रचनाएँ, जनवरी छबबीस, कलगी बाजरे की, सम्राज्ञी का नैवेद्यदान, अच्छा खंडित सत्य , योगफल

इकाई 2

रामधरी सिंह 'दिनकर'

प्रस्तावना, जीवन परिचय, साहित्यिक अवदान, यौवन की हुंकार, राष्ट्रीय चेतना, विषमताओं का चित्रण, आक्रमण के समय राष्ट्र चेतावनी, काव्यगत विशेषताएँ, कलापक्षीय विशेषताएँ, आलोकधन्वा, परंपरा, पाप, राजर्षि अभिनन्दन, विपथगा, मूल्यांकन

इकाई 3

कालजयी - भवानी प्रसाद मिश्र

प्रस्तावना, जीवन परिचय, साहित्यिक अवदान, रचनाएँ, काव्यगत विशेषताएँ, कालजयी, मूल्यांकन

इकाई 4

पारम्परिक छंद

छन्दों की उत्पत्ति, छन्दों का प्रारम्भ, छन्दों का विकास, छन्दों की उपादेयता, हिन्दी के कुछ प्रमुख छंद

इकाई 5

आधुनिक छंद

गजल छंद, सॉनेट छंद, हाइकु छंद, नवगीत, छन्द-शास्त्र की परिभाषाएँ, पिंगल के दशाक्षर

इकाई 1

अज्ञेय

संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 जीवन परिचय
1.3 रचनाकार व्यक्तित्व
1.4 रचनाएँ
1.5 जनवरी छब्बीस
1.6 कलगी बाजरे की
1.7 सम्राज्ञी का नैवेद्यदान
1.8 अच्छा खंडित सत्य
1.9 योगफल
1.10 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

1.1 प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास का एक अविस्मरणीय नाम है- सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय। इस नाम का कितना ही विरोध कीजिए, यह नाम भूलने के विरूद्ध है। इस नाम ने विरोधें से शक्ति पाई है और उस शक्ति का उपयोग अपनी विद्रोही, प्रयोग-विश्वासी सर्जनात्मकता में किया है। इस सर्जनात्मकता से उनकी अपनी सिद्धान्त दृष्टि का ऐसा अन्यान्याश्रित संबंध है कि रक्त और त्वचा की तरह उन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। साहित्य-भाषा, संस्कृति-परंपरा, इतिहास, मिथक, संस्कृति, आधुनिकता, विषय-वस्तु, तकनीक, छंद-लय चेतना में पारंपरिक अवधरणाओं का मूर्ति भजन उनका स्वभाव था। रूढ़ि-लीकों को तोड़ने में वे ऐसे आनंद का अनुभव करते थे कि वह आनंद सृजन के श्रेष्ठतम शिखरों का स्पर्श करने में अपने 'आत्म' की उपलब्धि पाता है। अपनी सर्जनात्मकता में उन्होंने हर बार एक नए मोड़ को जन्म दिया- चाहे वह 'अरी ओ करूणा प्रभामय' जैसी काव्य-कृति हो या 'शेखर'- एकजीवनी जैसा उपन्यास या 'त्रिशंकु' जेसा निबंध-संग्रह या 'अरे यायावर रहेगा याद' जैसा यात्रवृत्त। वे कहते भी रहे हैं कि शब्द में मेरी समाई नहीं होगी। मैं सन्नाटे का छंद हूँ। इस छंद की लय में निर्बाध गति से जीवन प्रवाहित होता है। इस रस प्रसिद्ध रचनाकार में लोक, विद्या और प्रकीर्ण-तीनों काव्य हेतुओं तीनों प्रेरणाओं की संश्लिष्टता ही रंग लाती रही है। उनको यह कला ज्ञात है कि पुरानी विषय-वस्तु को नई संवेदना में कैसे निरूपित किया जा सकता है। अज्ञेय नए साहित्यिक विवाद उठाते भी हैं और उन विवादों पर सोचने, बहस करने पर अपने जागरूक पाठक को विवश भी करते हैं। अज्ञेय के सर्जन में ऐसा कुछ है कि हम उसे नकार नहीं सकते।

अज्ञेय को नकारने का अर्थ है- नए सोच को अस्वीकार करना। अज्ञेय का स्वदेश 'अग्रदूत' (1933), 'चिंता' (1942), 'इत्यलम' (1946) जेसे काव्य-संग्रहों में अपनी आँखे खोलकर जीवन-जगत को देखता है और रचना है उसमें छायावादी मनोभूमि का पूरा कब्जा है। सत्याग्रह युग का अज्ञेय 'हरी घास पर क्षणभर' (1949) रमती है और रोमांटिक मनोभमि से मुक्ति पाकर 'बावरा अहेरी' (1954) बन जाता है। आगे का पूरा रचना-संसार एंटी रोमांटिक मनोभूमि का सर्जनात्मक विस्तार है। राहों के अन्वेषी का अर्थ समर्थ 'इन्द्रधनुष रोदे हुए में', 'अरी ओ करूणा प्रभामय' और 'आँगन के चार द्वार' की अगवानी करता मिलता है। तुलसी-कबीर-निराला और प्रसाद की तरह 'देश काल के रार से बिधकर' अश्रेय का कवि जागता है। जागता और सोचता है 'कितनी नावों में कितनी बार'। अनंत सुख: दुखों का साक्षात्कार। निरंतर जटिल और कठिन होती जीवन यात्रओं के अनंत की स्थिति-परिस्थिति से परिवेश से कविता निचोड़ने का अरमान अंगडाई लेता मिलता है। 'सुनहरे शैवाल' की जापानी छाया-कवियाँ सर्जनात्मकता में कौंध-कौंध जाती हैं। गगन में घिरते मेघों से सुधियों का बरसना कभी कवि मन को चातक बना देता है, कभी हिय हारिल को टीसों से भर देता है।

1.2 जीवन परिचय

अज्ञेय का पूरा नाम है- सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय। श्री हीरानंद वात्स्यायन उनके पिता का नाम है। इस रचनाकार को जैल यात्राओं के दौरान गुप्त नाम से लिखने के लिए 'अज्ञेय' नाम जैनेन्द्र कुमार का दिया हुआ है, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। जीवन भर वे 'अज्ञेय' नाम से ही सृजन कार्य में प्रवृत्त रहे। पिता पुरातत्व विभाग में खुदाई-शिविरों में अधिकारी थे। अज्ञेय का जन्म कसया (जिला देवरिया) के एक खुदाई शिविर में 7 मार्च 1911 को हुआ। कसया (कुशी नगर) का संबंध गौतम बुद्ध के निर्वाण स्थान से भी लिया जाता है। अज्ञेय ने बौद्ध धर्म की शिक्षा तो न ली पर बुद्ध ने अज्ञेय को भीतर से प्रभावित किया। वे जीवन-भर एक जगह टिककर न रहे। यायावर बने रहे और आत्मान्वेषण,

टिप्पणी

जिज्ञासा तथा आत्म-दान के प्रति खुले मन से झुके रहे। माँ से अधिक पिता के व्यक्तित्व का प्रभाव ग्रहण किया। बचपन से ही अन्तर्मुखी और सच बोलने के कारण उनका घरेलू नाम 'सच्चा' रखा गया।

उन्हें घर पर पुराने ढंग से शिक्षा-दीक्षा भी दी गई। उन्होंने स्वयं कहा है-श्एक तो मेरी शिक्षा-दीक्षा भी पुराने ढंग से आरम्भ हुई थी, जिसमें पटिया और लेखनी का काम भी होता था, लेकिन पुस्तकों का विशेष प्रयोग नहीं होता था। पुस्तक का काम स्मृति ही देती थी। यों घर में पुस्तकें बहुत थीं, लेकिन उन किशोर वर्षों में मेरा काम श्रुति परंपरा से ही चल जाता था। पिता जी भी जब घर पर होते थे तो अक्सर संस्कृत श्लोकों का स्वरपाठ करते थे और उनकी अनुपस्थिति में बड़ी बहन प्राय: हिन्दी के काव्य-ग्रन्थ या तो सस्वर पढ़ा करती थीं या हम भाईयों को बिठाकर सुनाया करती थीं।' अज्ञेय ने गायत्री मंत्र अष्टाध्यायी कालिदास के सृजन के साथ-साथ अंग्रेजी की मौखिक शिक्षा ली। और अक्षर ज्ञान से पहले ही मैं दो-ढाई सौ अंग्रेजी शब्द सीखकर वह भाषा वैसे बोलने लगा था जिसे फर्र-फर्र अंग्रेजी कहते हैं। अंग्रेजी में ही कुछ हल्की कविताएँ और तुगबन्दियाँ रट ली थीं।' बचपन में टेनीसन पढ़ा और भारत के स्वाधीनता के आदोलन के प्रभाव में आए। अज्ञेय एकान्तप्रेमी, प्रकृति प्रिय और जिज्ञासु रह। हिंदी उन्होंने की बाद में सीखी और इस क्षेत्र में वे मैथिलीशरण गुप्त को अपना काव्य-गुरू घोषित तौर पर मानते हैं। गुप्त जी के साथ श्रीधर पाठक, हरिऔध, मुकुटधर पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी की कविताओं को मनोयोगपूर्वक पढ़ा। तुकों-लयों का अभ्यास किया। रवीन्द्रनाथ और जयशंकर प्रसाद, सरोजिनी नायडू और निराला को लंबे समय तक मन में समाये रहे।

अज्ञेय का बचपन पटना, लाहौर, लखनऊ, बडौदा, मद्रास, उटकमंड आदि कई स्थानों पर बीता। उनकी 'अज्ञेय' शिक्षा एक स्थान पर न हुई। श्रीनगर जममू में अंग्रेजी शिक्षा तथा नालंदा-पटना में राखाल दास के संपर्क में आकर बांग्ला. पढ़ी। सन् 1925 में हाई स्कूल पंजाब से, इण्टर (साइंस) 1927 में मद्रास से, बी.एस.सी. 1929 में फोरमन कॉलेज, लाहौर से उत्तीर्ण की। एम.ए. अंग्रेजी में दाखिल लिया ही था कि क्रांतिकारियों के संपर्क में आ जाने के कारण पढ़ाई न चल सकी। पर अज्ञेय प्राचीन नवीन भारतीय साहितय तथा पश्चिमी साहित्य को डटकर पढ़ते रहे। अनेक बार यूरोप की यात्राएँ कीं। फ्रांस के कैथोलिक पादरी पियेर दानियेल के सहयोग से मसीही साधना की गहराई में प्रवेश किया। इसी बीच उन्होंने अपनी पहली पत्नी को छोड़कर कपिला वात्स्यायन से विवाह किया। कपिल जी के व्यक्तित्व ने अज्ञेय जी की ललित कलाओं का गहरा संस्कार दिया। वे एक संस्कारी रचनाकार के रूप में उभरे और उनमें विश्व दृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ।

1.3 रचनाकार व्यक्तित्व

अज्ञेय का रचनाकार व्यक्तित्व छायावादोत्तर काल में 'आधुनिक भाव बोध' के प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। वे नए काव्य आंदोलनों, प्रवृत्तियों के सूत्रधर कवि, मौलिक निबंधकार, उपन्यासकार, कहानीकार, सम्पादक, हिंदी में नवीन आलोचकनशास्त्र के निर्माता, तुलनात्मक साहित्य के प्रतिष्ठापक, काव्य-संकलनों, पत्र-पत्रिकाओं के यशस्वी सम्पादक और सांस्कृतिक मनीषी एक साथ रहे हैं। वे किशोर अवस्था से ही काव्य-रचना एवं साहित्य रूचि की ओर प्रवृत्त रहे। उन्होंने सैनिक, किसान विशाल, भारत, साप्ताहिक 'दिनमान' नया प्रतीक एवं अंग्रेजी त्रैमासिक 'वाक' का सम्पादन किया। अज्ञेय जी ने जब लिखना आरम्भ किया तब प्रगतिवादी आंदोलन जोरों पर था। कविता छायावादी प्रभाव से मुक्त होकर अंतर्मुखी प्रवृत्ति छोड़ कर बाहरी जगत की ओर अग्रसर होने लगी थी। इस प्रगतिवादी काव्य का ही एक रूप प्रयोगवादी आंदोलन में प्रतिफलित हआ। इसका प्रवर्तन 'तारक सप्तक' के उद्धार सच्चिदानंद. हीरानंद वात्सयायन अज्ञेय ने किया। इस काव्य-संकलन में सात प्रयोगवादी कवियों की

टिप्पणी

कविताएँ संगृहीत हैं। 'तार सप्तक' की भूमिका इस नये आंदोलन का घोषणापत्र सिद्ध हुई यह काव्य तन तत्कालीन काव्य परंपरा के विपरीत एक नवीन रूप में सामने आया। अज्ञेय ने अपने सूक्ष्म कलात्मक बोध, व्यापक जीवन अनुभूति और समृद्धि कल्पना शक्ति तथा सहज परंतु संकेतमयी अभिव्यंजना के द्वारा परिचित भावनाओं के नूतन और अनछुए रूपों को उजागर किया।

परम्परागत घिसी-पिटी राजनीति सुधर और क्रांति के दोहराये गये नारों के स्थान पर मानवीय और प्राकृतिक जगत के स्पन्दनों को बोल-चाल की भाषा में वार्तालाप आलंकारिकता और लाक्षणिकता के आतंक से काव्यशिल्प को मुक्त कर नवीन काव्यधरा प्रयोगवादी, काव्यधरा के नाम से जानी जाती हैं अज्ञेय जी ने मानव नियति और प्रकृतिक सौंदर्य के घिसे-पिटे वक्तव्यों और मढ़ी-मढ़ाई शैली से हटकर अपने अंतर्गत को वायीं देकर बड़े साहस का काम किया। उन्होंने समष्टि को महत्वपूर्ण अवश्य माना परंतु साथ ही व्यक्ति की महत्ता और निजता को अखंडित रखा। व्यक्ति मन की गरिमा को उन्होंने फिर से स्थापित किया और उसके विकास को अनदेखा करने से जो गंभीर संकट उत्पन्न होता जा रहा था उसकी ओर ध्यान आकृष्ट किया। कवि, कथाकार, निबंधकार, समीक्षक, घुमक्कड़, गंभीर अध्येयता होने के कारण अज्ञेय के बहमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व की संपूर्ण अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं से प्राप्त होती है। उनका विचार है कि बाह्य आवश्यकताओं की पूर्ति ही मनुष्य के लिए पर्याप्त नहीं है अपितु उसके अन्त:करण का विकास और समृद्धि भी उतनी ही आवश्यक है। नए सृजन की लगभाग सभी नवीन विधओं पर उनके विचारो के रंग और रूप की अमिट का है। वे बद्ध और जैन दर्शन, वैष्णव चिंता परम्परा, मानवेन्द्र राम के रेडिकल ह्यूमेनिज्म परम्परा विरोधी, क्रांतिकारी के रूप में भी चर्चित रहे हैं। अज्ञेय साम्यवादी विचारधरा से सहमत नहीं रहे, उन्होंने भारतीय चिंतन के लोकतन्त्रवादी मूल्यों का समर्थन किया। कहना न होगा कि अज्ञेय उन अविरल रचनाकारों में से हैं, जिनका व्यक्तित्व कला-सौंदर्य के नवीन निर्माता और नयी राहों के अन्वेषी दोनों ही प्रतिमानों पर खरा उतरा है। वे एक ओर चिंतनशील अंतदृष्टि के रचनाकार हैं, दूसरी ओर दृष्टि सम्पन्न आलोचक।

सम्पादन, प्रकाशन, प्रसारण, गोष्ठी, आयोजन आदि सभी कोणों से अज्ञेय की दृष्टि और नस, बोध, के विकास की दशा का ऐतिहासिक महत्व है। साहित्य के इतिहास के विद्यार्थी के लिए यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि अज्ञेय के प्रखर और चिंतनशील, प्रयोगशहील और संस्कारी, विद्रोही व्यक्तित्व ने नवीन सर्जनात्मकता को आच्छादित नहीं किया-बल्कि उसके विकसित होने में पूरा योगदान दिया है। उन्होंने अपने छात्र जीवन से ही भारतीय स्वाधीनता संग्राम में मानव-मुक्ति के लिए सक्रिय साझेदारी की। सन् 1927 में भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद के साथ सशस्त्र क्रांति का आह्वान किया। वे 'हिंदुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना' के सदस्य बने। अंग्रेजी साम्राज्यवाद को खदेड़ने के लिए उन्होंने लाहौर से दिल्ली तक बम ढोए। बम बनाने वाली फैक्ट्री के अज्ञेय वैज्ञानिक सलाहकार रहे और 1930 ई. में गिरफ्तार हुए। कई वर्षों तक जेल की यातना भरी जिंदगी व्यतीत की। 'चिंता', 'शेखर एक जीवनी', 'कोठी की बात' जैसी कृतियों की रचना जेल में ही की। 'दु:ख सभी को मांजता है' - यह आत्म-ज्ञान का दर्शन उन्होंने अनुभव से प्राप्त किया। जेल से छूटकर किसान आंदोलनों में काम किया। देश-विदेश की खाक छानी तथा 'सैनिक', 'विशाल भारत' जेसे पत्र के सम्पादन विभागों में नौकरी की। भारत के कला तीर्थों की बार-बार यात्राएँ की। 1955 में पश्चिमी यरोप की यात्रा की तथा कवियों, चित्रकारों, दार्शनिकों के व्यक्तिगत संपर्क में आए। जापान-फिलीपीन की यात्र पर निकले। पस गए तथा दार्शनिक पियेर से मठ में दीक्षा ली। 1961 में कैलिफोर्निया में भारतीय साहित्य-संस्कृति पढ़ाने के लिए नियुक्त हुए। अमेरिका घूमे, ऑस्ट्रेलिया के सेमिनारों में भाग लिया। कुछ समय जोधपुर विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा-विभाग के निदेशक रहे फिर आकाशवाणी में रहे। 'दिनमान', 'नवभारत टाइम्स' के सम्पादक रहे

और सब छोड़कर साहित्य सेवा को समर्पित हो गए। छायवादी भावावेग और आसक्ति अनेक व्यक्तित्व का गुण कभी नहीं रहा, न जीवन में, न रचना में।

1.4 रचनाएँ

अज्ञेय की रचनाओं का छायवाद युग से ही आरम्भ हो जाता है। उनकी प्रकाशित रचनाओं का क्रम इस प्रकार है- काव्य संकलन-भग्नदूत (1933), चिंता (1942), इत्यलम् (1943), हरी घास पर क्षणभर (1949), बावरा अहेरी (1954), इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये (1957), अरी ओ करूणा प्रभामय (1959), आँगन के पार द्वारा (1961), सुनहरे शैवाल (1965), प्रिजन डेज एण्ड अदर पोयम्स (अंग्रेजी में 1946), कितनी नावों में कितनी बार (1966), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1968), सागर मुद्रा (1969), पहले मैं सन्नाय बुनता हूँ . (1973), ऐसा कहीं कोई घर आपने देखा है? आदि। अज्ञेय की संपूर्ण कविताओं का संकलन दो खण्डों में 'सदानीय' नाम से प्रकाशित है।

सम्पादित ग्रन्थ

तार सप्तक (1973 ई.), दूसरा सप्तक (1951 ई.), तीसरा सप्तक (1959 ई.), चौथा सप्तक (1969 ई.), पुष्करिणी भाग-2, रूपाम्बरा (1960), आज का भारतीय साहित्य, नए एकांकी (1952), नेहरू अभिनंदन ग्रंथ संयुक्त रूप से (1949), हिंदी की प्रतिनिधि कहानियाँ (1952)। अनुदित श्रीकान्त (शरत्चन्द्र, अंग्रेजी में 1944), द रेजिग्नेशन 'जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास 'त्यागपत्र' का अंग्रेजी में 1946), नीलाम्बरा (अंग्रेजी में)।

भ्रमण वृतान्त

अरे यायावर रहेगा याद (1953), एक बूंद सहसा उछली (1961)।

कहानियाँ

विपथगा (1937)., परम्परा (1944), कोठरी की बात (1945), शरणार्थी (1948), जयदोल (1951), ये तेरे प्रतिरूप (1961)।

उपन्यास

शेखर एक जीवनी भाग-1 (1941), भाग-2 (1944), नदी के द्वीप (1952), अपने-अपने अजनबी (1961), बारह खम्भा (सम्पादित)।

निबंध-संग्रह

त्रिशंकु, आत्मनेपद, हिंदी साहित्यः एक आधुनिक परिदृश्य, सबरंग और कुछ राग, भवन्ती, अन्तरा, लिखि कागद कोरि, जोग लिखी, आलवाल अद्यतन, संवत्सर, कहां है द्वारका, आत्मपरक, सर्जना और संदर्भ आदि।

काव्यगत विशेषताएँ

अज्ञेय जी बौद्धिक भावभूमि के कवि थे, परंतु उनकी रचनाओं में भावनाओं का सजीव और स्वाभाविक चित्रण देखने को मिलता है। उनका अनुभूति पक्ष उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही है। अज्ञेय जी के काव्य में विविध रसों का परिपाक हुआ है, परन्तु श्रृंगार, करूण, वीर, शान्त आदि रसों का विशेष रूप से निरूपण किया है। उन्होंने अपने काव्य में प्रेम-तत्व को महत्ता प्रदान की है। उनके काव्य में प्रेम का प्रकटन कहीं तो स्त्री के माध्यम से हुआ है तो कहीं पुरूष के माध्यम से हुआ है। अज्ञेय जी के काव्य में मानवतावादी भावना के भी दर्शन होते हैं। उनकी यह भावना 'हिरोशिमा' कविता में विशेष

टिप्पणी

रूप से देखने को मिलती है। अज्ञेय जी के काव्य में प्रकृति विविध रूपों में चित्रित हुई है। जहाँ का आलम्बन रूप है, वहीं उद्दीपन रूप भी। प्रकति का मानवीकरण भी हआ है। प्रकति उनकी रहस्यवादी अनुभूतियों के प्रकट का साधन भी बनी है। अज्ञेय जी के काव्य में रहस्यवादी भावना की प्रधनता है। उन्होंने अनेक विम्बों और प्रतीकों के माध्यम से रहस्यवाद को प्रस्तुत किया है। कवि ने अपने रहस्यवा विराट सत्ता के प्रति अपना सर्वस्व अर्पित किया हैं उनके काव्य में छायवाद के भी दर्शन हैं। उसी का परिणाम है कि उन्होंने प्रकृति का मानवीकरण किया है। अज्ञेय जी के काव्य प्रयोगवाद के साथ प्रगतिवादी भावना के भी दर्शन होते हैं। उसी का परिणाम है कि उन्होंने शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति, यथार्तता और शोषक संस्कृति का विरोध किया है। अब या विकसित मानस का व्यक्ति भौतिक सम्पन्नता से मुक्त होने पर भी अपने लिये तथा पर के लिए समस्या बना ही रहता है। इसलिए केवल शरीर की आवश्यकता की पूर्ति पर्याप्त नही है। अज्ञेय जी निरन्तर व्यक्ति के मन के विकास की यात्र को महत्वपूर्ण मानकर चलते रहे है। अज्ञेय जी का कलापक्ष बहुत सबल और प्रभावशाली है। उनकी भाषा शुद्ध, परिष्कन परिमार्जित और संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली है। उनकी भाषा में विविधता दिखाई देती है। अज्ञेय जी ने मुक्तक शैली में अपने काव्य की रचना की है। उनकी शैली में प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता और व्यंग्यात्मकता के दर्शन होते हैं। अज्ञेय जी के काव्य में प्रकृति और पुरातन उपकरणों को लेकर बड़े सुंदर और सजीव बिम्बों की योजना की है। उन्होंने अपने काव्य में अप्रस्तुत विध न और प्रतीक विधन को भी स्थान दिया है। उनके प्रतीक न्यूनता और मौलिकता के द्योतक हैं। अज्ञेय जी ने आरम्भ में मात्रिक और वर्णिक छन्दों का अपने काव्य में प्रयोग किया था परंतु बाद में उन्होंने मुक्त छंद को स्वीकार किया। अज्ञेय जी ने अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग साध्य रूप में नहीं अपितु साधन रूप में किया है। उनका सबसे प्रिय अलंकार उपमा है। इसके अतिरिक्त उनके काव्य में रूपक, उल्लेख, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण, समासोक्ति, ध्वन्यार्थ व्यंजना आदि अलंकारों का भी सार्थक प्रयोग मिलता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अज्ञेय जी प्रतिभा सम्पन्न एवं समर्थ कवि हैं। उन्होंने हिन्दी कविता का नव संस्कार किया। उन्हें हिंदी साहित्य जगत में प्रयोगवादी कविता का प्रवर्तक एवं 'नयी कविता' का कर्णधर माना जाता है। शिल्प के नूतन उपकरणों की ओर कवियों का ध्यान आकृष्ट करने वाले प्रयोगधर्मी कवि के रूप में हिन्दी साहित्य सदैव उनका ऋणी रहेगा।

मूल्यांकन

अज्ञेय में नए रहस्यवादी रूझान की प्रवृत्ति मिलती है। अपने एक लेख 'चेतना के संस्कार' में वे गाँधी विचारदर्शन की भाँति सोचते मिलते हैं। उन्हें लगता है कि भौतिकता-यांत्रिकता के अतिशय विस्तार ने मानव की आंतरिक और आध्यात्मिक शक्ति का हास किया है। मानव विकास सोद्देशीय होना चाहिए और यह सोद्देश्यता परमपिता, ब्रह्म या अनादि चेतना को किसी रूप में माने बिना सिद्ध नहीं होती। हिंदी की आधुनिक कविता में भारतेन्दु, श्रीधर पाठक, जयशंकर प्रसाद और निराला के काव्य प्रयोगों ने प्रगति का एक नया पथ निर्मित किया है और नवीन काव्य-राहों की खोज की। इसी परम्परा को अज्ञेय विस्तार एवं गहराई देते हैं। प्रयोगों की इस आंतरिक निष्ठा के कारण उन्हें 'प्रयोगवादी काव्य-प्रवत्ति' का प्रवर्तक कवि माना जाता है। प्रयोग, कविता में नयी दिशा की खोज है।

अज्ञेय जी के काव्य में आधुनिकता का अर्थ है- नवीनता और मौलिकता, दृष्टि स मध्ययुगीन श्रृद्धावादी संस्कारों से मुक्ति तथा नवीन संवेदना की बौद्धिक आग के प्रति लगाव। हिंदी की आधुनिक काव्य धरा में भारतेन्दु, श्रीधर पाठक, जयशंकर प्रसाद, निराला जी का दिशा-दृष्टि को सांस्कृतिक संवेदन और संस्कार के साथ रचनात्मकता में ढालने वालों में अज्ञ का नाम स्मरणीय है। वे हमारी परम्परा की आधुनिकता हैं, तथा काव्य भाषा की रचनात्मक सम्भावनाओं को भारतीयता के मूल स्त्रेतों से जोड़ने वाले

रचनाकार। वे वस्तु और शिल्प के नए से नए प्रयोगों से हिन्दी कविता को समर्थ और सक्षम बनाते हैं। नवीन प्रवृत्तियों, नवीन आंदोलनों की अगुवाई करने के कापरण उनके सुजन का ऐतिहासिक महत्व है। कहना न होगा कि मुक्तिबोध बाहर से नयी कविता को और अज्ञेय भीतर से नई कविता को नया सौन्दर्य बोध देते हैं। मार्क्सवादी मुक्तिबोध और मनोविश्लेषणवादी अज्ञेय दोनों का काव्य-व्यक्तित्व मिलकर ही नयी कविता को भरा पूरा बनाता है। अज्ञेय को व्यक्तिवादी-क्षणवादी, भोगवादी कहकर अभिजात्यवादी भी सिद्ध किया गया है, पर इन आरोपों से वे बाहर के कवि हैं। छायावादोत्तर कवित में अज्ञेय का काव्य चिंतन एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है और काव्य सृजन नवीन भाव-बोध की सशक्त अभिव्यक्ति है।

1.5 जनवरी छब्बीस

आज हम अपने युगों के स्वप्न को
यह नयी आलोक-मंजूषा समर्पित कर रहें हैं।
आज हम अक्लान्त, ध्रुव, अविराम गति से बढ़े चलने का
कठिन व्रत धर रहे हैं
आज हम समवाय के हित, स्वेच्छया
आत्म-अनुशासन नया यह वर रहे हैं।
निराशा की दीर्घ तमसा में सजग रह हम
हुताशन पालते थे साधना का
आज हम अपने युगों के स्वप्न को
आलोक-मंजूषा समर्पित कर रहे हैं।
सुनो हे नागरिक! अभिनव सभ्य भारत के नये जनराज्य के
सुनो! यह मंजूषा तुम्हारी है।
पला है आलोक चिर-दिन यह तुम्हारे स्नेह से, तुम्हारे ही रक्त से।
तुम्हीं दाता हो, तुम्ही होता, तुम्हीं यजमान हो।
यह तुम्हारा पर्व है।
भूमि-सुत! इस पुण्य-भू की प्रजा, स्रष्टा तुम्ही हो इस नये रूपाकार के
तुम्हीं से उद्‌भूत हो कर बल तुम्हारा
साधना का तेज-तज की दीप्ति-तुम को नया गौरव दे रही है।
यह तुम्हारे कर्म का ही प्रस्फुटन है।
नागरिक, जय! प्रजा-जन, जय! राष्ट्र के सच्चे विधयक, जय!
हम आलोक-मंजूषा समर्पित कर रहे हैं : और मंजूषा तुम्हारी है
और यह आलोक तुम्हारे ही अडिग विश्वास का आलोक है।
किन्तु रूपाकार यह केवल प्रतिज्ञा है
उत्तरोतर लोक का कल्याण ही है साध्य:

टिप्पणी

अनुशासन उसी के हेतु है।
यह प्रतिज्ञा ही हमारा दाय है लम्बे युगों की साधना का,
जिसे हम ने धर्म जाना।
स्वयं अपनी अस्थियाँ दे कर हमी ने असत पर सत् की
विजय का मर्म जाना।
सम्पुटित पर हाथ, जिस ने गोलियाँ निज वक्ष पर झेली,
शमन कर ज्वार हिंसा का
उसी के नत-शीश धीरज को हमारे स्तिमित चिर-संस्कार ने
सच्चा कृती का कर्म जाना।
साधना रूकती नहीं : आलोक जैसे नहीं बँधता।
यह सुघर मंजूष भी झर गिरा सुन्दर फूल है पथ-कूल का।
माँग पथ की इसी से चुकती नहीं।
फिर भी बीन लो यह फूल
स्मरण कर लो इसी पथ पर गिरे सेनानी जयी को,
बढ़ चलो फिर शोध में अपने उसी धुंधले युगों के स्वप्न की
जिसे हम आलोक-मंजूषा समर्पित कर रहे हैं।
आज हम अपने युगों के स्वप्न को यह नयी आलोक-मंजूषा
समर्पित कर रहे हैं। -अज्ञेय

अज्ञेय जी स्वतंत्रता सेनानी रहे हैं। देश के आंदोलनों में बढ़चढ़कर हिस्सा लिया था। जब देश आजाद हो गया तब 26 जनवरी को उन्होंने कहा-

आ हम अपने युगों के स्वप्न को,
यह नयी आलोक मंजूषा समर्पित कर रहे हैं।

अर्थात् हमारे युग के जो स्वप्न थे, जो अरमान थे, जो हमने स्वप्न देखे थे, वे स्वप्न अब साकार हो गए हैं। हम अपने सपने को आलोक की, प्रकाश की, रोशनी को समर्पित कर रहे हैं। हमारे अरमान पूरे हो गए हैं। हमने आजादी प्राप्त कर ली इसीलिए कवि भारत के आम व्यक्ति को, भारत के लोगों को, जनता को संबोधित करते हुए कहते हैं

आज हम अकलान्त, ध्रुव, अविराम गति से बढ़े चलने का
कठिन व्रत धर रहे हैं।

अब हमारा संविधन लागू है, अब हमारा गणतंत्र लागू है, इसीलिए हम अक्लांत भाव से, बिना उदास हुए, बिना थके, अविराम गति से बढ़ चलने का व्रत धर रहे हैं। हम ये व्रत धरण करते हैं, हम बिना रूके बढ़ते रहेंगे। हम उन्नति के शिखर पर चढ़ते रहेंगे।

आज हम समवाय के हित, स्वेच्छा
आत्म-अनुशासन नया यह वर रहे हैं।

टिप्पणी

आज हम समष्टि के हित में, समुदाय के हित में, सभी के हित में अपनी इच्छा से आत्मानुशासन का यह नया संकल्प वरण कर रहे है। अब हमारा गणतंत्र लागू हुआ है, हमारा लोकतंत्र लागू हुआ है और आत्मानुशासन का यह नया संकल्प धरण कर रहे हैं।

निराशा की दीर्घ तमसा में, सजग रह हम
दुताशन पालते थे, साधना का

कवि कहते हैं कि जब हम गुलाम थे तब निराशा थी दीर्घ अंधकार में भी हम सजग होकर साधना की, अग्नि प्रज्वलित करके रखते थे। पुनः साधना की, देश की आजादी के लिए संघर्ष किया।

आज हम अपने युगों के स्वप्न को
आलोक-मंजूषा समर्पित कर रहे हैं।

हमारे युग के जो सपने थे, जो अरमान थे, हम इस देश की उन्नति, देश के वैभव, देश के उत्थान के लिए सोचते थे। आजादी के बारे में सोचते थे। अब सब सपने सार्थक हो गए। आज हम आलोक मंजूषा, रोशनी की पिटारी, प्रकाश की यह पिटारी समृद्ध कर रहे हैं।

सुनो हे नागरिक, अभिनव सभ्य भारत के नये जनराजय के सुनो! यह मंजूषा तुम्हारी है।

अब कवि भारत के आम नागरिक को संबोधित करते हुए कहते हैं- हे भारत के नागरिक सुनो, यह प्रकाश की पिटारी, रोशनी, यह उजाला, यह खुशहाली यह सब तुम्हारी है।

पला है आलोक चिर-दिन, यह तुम्हारे स्नेह से, तुम्हारे ही रक्स से।

यह रोशनी तुम्हारे स्नेह से पल्लवित हुई है। यह स्वतंत्रता रूपी, गणतंत्र रूपी, लोकतंत्र रूंपी, यह रोशनी प्राप्त हुई है, यह तुम्हारे स्नेह के समर्पण से हुई है।

तुम्हीं दाता हो, तुम्हीं होता, तुम्ही यजमान हो। यह तुम्हारा पर्व है। ;;; कवि कह रहे हैं, इस रोशनी के, फल के दाता भी तुम हो, इसके होता, इसके पुरोहित भी तुम हो, तुम्हीं यजमान हो, इसका फल भोगने वाले यजमान भी तुम्ही हो। यह तुम्हारा पर्व है। 26 जनवरी भारत के आम आदमी का पर्व है।

भूमि सुत! इस पूण्य-भू की प्रजा, सृष्टा तुम्हीं हो, इस नये रूपाकार के।

हे धरा के पुत्र तुम इस पुण्य धरती की प्रजा हो और सृष्टा तुम्हीं हो। यह जो स्वतंत्रता प्राप्त हुई, जो लोकतंत्र का निर्माण हुआ, यह तुम्हारे ही द्वारा हुआ है और तुम्हारे लिए ही हुआ है। तुम्ही से उद्‌भूत हो कर बल तुम्हारा साधना का तेज तप की दीप्ति तुमको नया गौरव दे रही है।

यह तुम्हारी ही तपस्या की दीप्ति, तुमने जो साधना की, तुमने जो संघर्ष किया, उसकी चमक, उसकी दीप्ति तुमको नया गौरव दे रही है। आज तुमको गौरव प्रदान कर रही है। यह तुम्हारे कर्म का ही प्रस्फुलन है। तुमने जो कर्म किये, उसी का यह प्रतिफलन है। तुम्हारे कर्मों की वजह से ही, तुम्हारे संकल्प और परिश्रम के वजह से ही देश का यह लोकतंत्र. फलीभूत हुआ है।

नागरिक, जय! प्रजा जन, जय! राष्ट्र के सच्चे-विधयक, जय!

हे नागरिक तुम्हारी जय हो। प्रजाजन जय, हे आम आदमी तुम्हारी जय हो, तुम राष्ट के सच्चे निर्माता हो। तुम्हारी जय हो।

हम आलोक मंजूषा समर्पित कर रहे हैं और मंजूषा तुम्हारी है। यह रोशनी की मंजषा यह आलोक का पिटारी हम समर्पित कर रहे हैं और मंजूषा तुम्हारी है और यह रोशनी की पिटारी तुम्हारी है, और यह आलोक तुम्हारे ही अडिग विश्वास का आलोक है। यह रोशनी तुम्हारे विश्वास की रोशनी है। तुम संकल्प और विश्वास लेकर चले थे, और तुमने ही इस रोशनी को उत्पन्न किया है।

अज्ञेय

टिप्पणी

किंतु रूपाकार यह केवल प्रतिज्ञा है उत्तरोत्तर
लोक का कल्याण ही है साध्य :
अनुशासन उसी के हेतु है।

अब कवि कह रहें हैं, हमने अपना गणतंत्र लागू कर दिया, हमने आजदी प्राप्त कर ली, पर हमारी प्रतिज्ञा तो रूपाकार हो गयी, हमने जो संकल्प लिया था, वह परिपूर्ण हो गया, पर यही हमारा लक्ष्य नहीं था, केवल लोकतंत्र अथवा गणतंत्र की प्राप्ति ही हमा साध्य नहीं था, हमारा साध्य है लोक का कल्याण। इस धरती के हर प्राणी का कल्याण हो। अनुशासन उसी के हेतु हो हमने जो ये संविधन बनाया है, हमने जो अनुशासन की अपनाया है, ये उसी के निमित्त हैं क्योंकि हम इस लोक का कल्याण करना चाहते हैं।

यह प्रतिज्ञा ही हमारा दाय है लम्बे युगों की साधना का,
जिसे हम ने धर्म जाना।

हमने लंबे युगों तक जो साधना की, उस साधना का यह दाय है, उसकी धरोहर है। उसका प्रतिफल है, जिसे हमने धर्म जानकर संघर्ष किया था।

स्वयं अपनी अस्थियाँ दे कर हमी ने असत पर सत् की
विजय का मर्म जाना।

हमने इस आजादी के लिए अपनी अस्थियां दान कर दी। इस लोकतंत्र के सपने को फलीभूत करने के लिए स्वयं अनी अस्थियां दधीजी की तरह दान में दे दीं और हमने असत्य पर सत्य की विजय का मर्म जाना।

सम्पुटित पर हाथ, जिस ने गोलियाँ निज वक्ष पर झेली,
शमन कर ज्वार हिंसा का

वे क्रांतिकारी, वे देशभक्त, वे मातृभूमि के परवाने, वे मातृभूमि पर अपने शीश को चढ़ाने वाले, जिसने अपने दोनो हाथ जोड़कर के, मातृभूमि के प्रति नतमस्तक होकर के अपने सीने पर गोलियां झेली और आक्रांता द्वारा, विदेशी शासन द्वारा जो हिंसा की, उसका मुकाबला किया।

उसी के नत-शीश धीरज को हमारे स्तिमित चिर-संस्कार ने
सच्चा कृती का कर्म जाना।

मातृभूमि के लिए गोलियां झेलने वाले लोग हमारे स्थिर संस्कारो ने उनके कर्म को सच्चे पुण्य का कर्म महसूस किया। सच्चे कृति का कर्म महसूस किया।

साधना रूकती नहीं : आलोक जैसे नहीं बँधता।

कवि कह रहे हैं कि जैसे साधना कभी रूकती नहीं है, उसी प्रकार प्रकाश, रोशनी भी द्य कभी रूकती नहीं है।

यह सुघर मंजूष भी झर गिरा
सुन्दर फूल है पथ-कूल का।

माँग पथ की इसी से चुकती नहीं। यह हमें जो आलोक की पिटारी मिली है, यह जो हमारा लोकंत्र मिला है, यह उस फूल की तरह है जो मार्ग में झरकर गिर गया है। कोई पथिक जो पथ पर बढ़े और कोई फूल गिरा हुआ मिले, इसका मतलब यह नहीं है कि उसका लक्ष्य पूरा हो गया है, पथ पर चलते रहना है। हमने लोकतंत्र की स्थापना कर ली, लेकिन अभी भी हमे अपने सपनों का भारत बनाना है। सपनों का भारत बनाना है।

टिप्पणी

फिर भी बीन लो यह फूल
स्मरण कर लो इसी पथ पर गिरे सेनानी जयी को,

कवि कहते हैं कि यह स्वतंत्रता रूपी वृक्ष के फूल का आनंद लो और याद करो उन सेनानियों को, उन विजेताओं, जो इस पथ पर बलिदान हुए, आहूत हुए।

बढ़ चलो फिर शोध में अपने उसी धुंधले युगों के स्वप्न की
जिसे हम आलोक-मंजूषा समर्पित कर रहे हैं।

हमने युगों-युगों से परम वैभव का, राष्ट्र के उत्थान का जो सपना देखा था, उन सपनों पर फिर आगे बढ़ चलो। हम अपने रोशनी की पिटारी-सपनों की आलोक मंजूषा समर्पित कर रहे हैं।

कवि अज्ञेय कहते हैं कि हमने जो स्वतंत्रता प्राप्त की है, यह तो हमारा साधन है। देश को परम वैभव पर पहुंचाने का। देश को शीर्ष पर पहुंचाने का। अभी भी हमे निरंतर आगे बढ़ना है। हमें बहुत कुछ करना है।

यह कविता राष्ट्र भावों से भरी हुई है।
यह हमारे गणराज्य, लोकतंत्र के महत्व को प्रतिपादित करने वाली कविता है।

1.6 कलगी बाजरे की

हरी बिछली घास।
दोलती कलगी छरहरी बाजरे की।
अगर मैं तुमको
ललाती सांझ के नभ की अकेली तरिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार-न्हायी हुई
हटकी कली चंपे की, वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय, उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि केवल यही : ये उपमान मैले हो गए हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।
कभी बासन अधिक घिसने से मुल्लमा छूट जाता है।
मगर क्या तुम, नहीं पहचान पाओगी:
तुम्हारे रूप के- तुम हो, निकट हो, इसी जादू के -
निजी किस सहज, गहरे बोध से, किस प्यार से मैं कहा रहा हूँ
अगर मैं यह कहूँ- बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की
आज हम शहरातियों को,
पालतू मालंच पर सँवरी जुही के फूल से

टिप्पणी

सृष्टि के विस्तार का-ऐश्वर्य का- औदार्य का
कहीं सच्चा, कहीं प्यारा, एक प्रती
बिछली घास है,
या शरद की साँझ के सून गगन की पीठिका पर दोलती कलगी
अकेली बाजर की और सचमुच, इन्हें जब-जब देखता हूँ
यह खुला वीरान संसृति का घना हो सिमट आता है
और मैं एकांत होता हूँ समर्पित शब्द जादू हैं
मगर क्या यह समर्पण कुछ नहीं है?

अज्ञेय की यह बहुचर्चित कविता है, जिसमें उन्होंने नष्ट बिंब और प्रतीक नए रचनाशिल्प तथा नयी शब्दरचना को अपनाया है। इसका प्रभाव उनकी पुरानी कविताओं से बिल्कुल भिन्न है। उनकी दृष्टि में परंपरागत प्रतीक बार-बार प्रयुक्त होते रहने के कारण मैले अर्थात् अनुपयुक्त हो गए हैं। अत: 'कलगी बाजरे की' कविता में वे अपनी प्रिया के लिए नष्ट प्रतीक का प्रयोग करते हैं। इस कविता में परिवर्तित प्राकृतिक सौंदर्य बोध दृष्टिगत होता है।

तुम हरी बिछली अर्थात् बिछाई हुई घास के समान प्रसन्न हो। बाजरे की दुबली-पतली फुर्तीली झूलती कलगी या तुरा हो। अगर मैं तुम्हें, ललाती संध्या में आसमान की अकेली तारिका या नक्षत्र कहता। किंतु अब नहीं कहता या शरद ऋतु की प्रभात में ओस से न्हायी हुई कमद, ताजगी भरी चम्पे की कली आदि तो नहीं कहता, तुम्हें लगता कि मेरा दिल छीछला है या रिक्त-सूना है या तो फिर मेरा प्यार ही मैला अर्थात् अनुपयुक्त है।

सिर्फ, सिर्फ यही बात है कि यह परंपरागत उपमान अब मैले या अनुपयुक्त हो गए है, अर्थहीन हो गए है। देवता भी इन सब प्रतीकों छोड़कर चले गए हैं। सब प्रतीक अर्थहीन बन चुके है। जैसे बर्तन को बार-बार या अधिक घिसने से उसका मुलम्मा घट जाता है, कलई निकल जाती है। तो क्या तुम अपने रूप को पहचान न पाओगी तुम तो तुम्हारे रूप के ही निकट हो, यही इसका जादू है। अपने ही सहज, गहरे बोझ से, किस प्यार से मैं यह कह रहा हूँ। हाँ अगर मैं यह कहँ कि तम बिछली घास हो. हरी-भरी खशी से हवा में दोलती दबली-पतली. फुर्तीली बाजरे की कलगी हो! तो क्या यह अच्छा नहीं हैं!

आज हम शहरों में रहनेवालों को पाले हुए मालंच पर सँवरी जुटी के फूल से भले ही लगती हो। वह अपने प्रेम के विषय में नगरवासियों से कुछ सुनना नहीं चाहता। किंतु सृष्टि का विस्तार, ऐश्वर्य और औदार्य का, कहीं सच्चा कहीं प्यारा एक प्रतीक बिछली घास है। प्राकृतिक उपमान विस्तृत, संपन्न हैं। बड़ी उदारता से प्रकृति इन उपमानों को देती हैं। वे सच्चे और प्यारे होते हैं। कवि कहते है कि सच्चा और प्यारा प्रती बिछली घास है या शरद ऋतु की संध्या के सूने- खाली आसमान के आसन या पीठिका पर झूलती अकेली बाजरे की कलगी सच कहूँ- जब जब इन्हें मैं देखता हुँ। तो यह खुला उजड़ा हुआ संसार केंद्रीतभूत-साधन होकर, संकुचित हो जाता है और मैं अकेला हो जाता हूँ 'समर्पित' शब्द जादू ही हैं। तो क्या यह प्यार में किया गया समर्पण कुछ भी नहीं। अज्ञेय ने प्रकृति के विराट रूप का चित्रण करते हुए सौंदर्यानुभूति, अनुभवों का खुलापन, अटूट प्रेम, समर्पण आदि का दर्शन कराया

टिप्पणी

है। उनकी दृष्टि से यह आत्मानुभूति और मुक्ति का क्षण है।

1.7 सम्राज्ञी का नैवेद्यदान ।

हे महाबुद्ध!
मैं मन्दिर में आई हूँ
रीते हाथ :
फूल मैं ला न सकी
औरों का संग्रह
तेरे योग्य न होता।
जो मुझे सुनाती
जीवन के विह्वल सुख-क्षण का गीत
खोलती रूप-जगत के द्वार,
जहाँ तेरी करुणा
बुनती रहती है
भव के सपनों, क्षण के आनन्दों के
रह : सूत्र अविराम
उस भोली मुग्ध को
काँपती डाली से विलगा न सकी।
जो कली खिलेगी जहाँ, खिली,
जो फूल जहाँ है,
जो भी सुख जिस भी डाली पर
हुआ पल्लवित, पुलकित,
मैं उसे वहीं पर
अक्षत, अनाघ्रात, अस्पृष्ट, अनाविल,
हे महाबुद्ध!
अर्पित करती हूँ तुझे।
वहीं-वहीं प्रत्येक भरे प्याला जीवन का,
वहीं-वहीं नैवेद्य चढ़ा
अपने सुन्दर आनन्द-निमिष का,
तेरा हो, हे विगतागत के वर्तमान के,
पद्मकोश! हे महाबुद्ध! -अज्ञेय

टिप्पणी

जापानी साम्राज्ञी कोमियो राजधनी नारा स्थित महाबोधि मन्दिर में बुद्ध के दर्शनार्थ जाते समय अचानक असमंजस में पड़ गई। वे तय नहीं कर पा रही थी कि भगवान बुद्ध को भेंट स्वरूप क्या लेकर जाया जाए? सोच-विचार के बाद अंत में वे रीते हाथ ही मन्दिर पहुंची। अज्ञेय जी ने उस घटना की स्मृति में 25 सितम्बर, 1957 के दिन तोक्यों में 'साम्राज्ञी का नैवेद्य दान' शीर्षक से कविता लिखी थी। बौद्ध साहित्य में भी साम्राज्ञी कोमियो का आदर के साथ स्मरण किया गया है। वे बुद्ध के विलक्षण भक्तों में शुमार होती हैं। यह कविता उस घटना के स्मरण के बहाने पौर्वात्य और पाश्चात्य जीवन मूल्यों के मूलभूत अन्तर को स्पष्ट करती हई बुद्ध की उस सारभूत करूणा के जीवन विवेक की साक्षी होती है - जिसमें माना गया है कि फूलों की सर्वाधिक शोभा डाल पर है। वे वहीं अक्षत, अनाघ्रात अस्पृष्ट और अनाविल रूप से पल्लवित पुलकित रहते हुए स्रष्टा के सम्मान में अर्पित रहें। जैसा कि गाँधी जी कहा करते थे कि पुष्प को उसकी डाल से विलग नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि उसका जीवन और सौन्दर्य डाल पर ही सुरक्षित है। बल्कि गाँधी बाबा का तो यहाँ तक मानना था कि पुष्प को डाल से तोड़ना माँ की गोद से शिशु को छीनना जैसा है।

भारतीय संस्कृति में पुष्प देवार्पण के लिए प्रयुक्त होते रहे हैं। प्राचीन भारत में ऋतु अनुसार फूलों से मालाएं, भुजबन्द, गजरे आदि बनाये जाकर आभूषण की तरह धरण किए जाते थे। यह सच है कि इसके लिए भी फूल को डाल से जुदा करना पड़ता है। लेकिन यह विलगाव 'यूज एण्ड थ्रो' के वर्तमान कल्चर से सर्वथा भिन्न चीज है। इन दिनों फूल मालाओं को गले में डालते ही तत्काल प्रभाव से उतार फेंकने की बेमुरव्वत परम्परा कायम हो गई है। जबकि इस शोभा यात्रा के लिए फूलों को अपना सर्वस्व निछावर करना पड़ता है। क्या यह फलों के प्रति सरासर अन्याय नहीं है कि समूची जीवन यात्रा तय कर किसी गले की शोभा बनने की फूलों की साध को बेरहमी से कुचलते हुए, किसी गले तक पहुँचने से पूर्व ही उन्हें उतार कर कुछ देर मंच पर पड़े रहने देने के बाद उपेक्षित भाव से समारोह स्थल के पिछवाड़े फेंक दिया जाए। जहाँ कूड़े कचरे के ढेर में पड़े हुए वे अपने दुर्भाग्य का रोना रोते रहें। जबकि भारतीय परम्परा यह रही है कि जिन फूलों से देवताओं का श्रृंगार किया जाता है वे अगली सुबह नई सज्जा से पूर्व तक देव प्रतिमाओं पर शोभते हैं। गुप्त काल में वरांगनाएं पुष्पों के आभूषण धरण करती थीं। विशिष्ट समारोहों में वे दिनभर उनकी शोभा बढ़ाते थे। कालिदास ने मेघदत में अशोक, आम्रमंजरी. नीलोत्पल (नीलकमल) नवमल्लिका और चमेली के पुष्पों को कामदेव के पाँच बाणों की संज्ञा दी है। आज भी दक्षिण भारत में महिलाएं अपने जडे में मोगरे की वेणी सजाती हैं और पुरूष अपनी प्रेमिकाओं और पत्नियों के लिए फूलों के गजरे खरीदते हैं। यह क्षणभंगूर फूलों के जरिए भंगुर-जीवन का रचे जाने वाला महारास है।

यह कविता जीवन-सौन्दर्य के उसी द्रष्टा भाव की साक्षी है। पहले अनुच्छेद में सम्राज्ञी कोमियों का कथन हैकि महाबुद्ध/मैं मन्दिर में आई हूँ/ रीते हाथ / फूल मैं ला न सकी/ औरों का संग्रह/ तेरे योग्य न होता। अर्थात् 'बौद्धिक सामर्थ्य के हे साकार प्रतिमान मैं रीते हाथ ही मंदिर आई हूँ। औरों की भाँति पुष्प-गुच्छ अथवा हार आपके लिए भेंट स्वरूप नहीं ला सकी। क्योंकि वैसा करना मुझे उचित नहीं जान पड़ा। फूल तो किसी और का संग्रह हैं। उसमें मेरा कोई योगदान नहीं है,जिसे आपको भेंट कर मैं गौरवान्वित महसूस करती। हे महाबुद्ध आज जो कि बौद्धिक विवेक की कसौटी हैं और सारभूत करूणा के परम प्रतीक भी, इसलिए आप ही मेरी उलझन को बेहतर समझेंगे कि मैं फूल क्यों नहीं ला सकी? ; दूसरे अनुच्छेद में अपनी उलझन को और स्पष्ट करते हुए सम्राज्ञी कोमियों कहती हैं कि 'हे महाबुद्ध तुम्हारी जो करूणापगी मुस्कान जीवन के विह्वल सुख-क्षणों का गीत सुनाती हई मेरे तई रूप जगत और सौन्दर्य के कितने कितने द्वार खोलती है और क्षण के आनंदों के जरिए जो सतत भव के नव सपनों का निर्माण करती है, वही मुझे डाल पर खिले मासूम फूलों में भी दीख पड़ी। डाल पर

टिप्पणी

खिली उस भोली मुग्धता को मैं भला कैसे जुदा कर सकती थी। इसीलिए मैं तेरे दर्शनार्थ खाली हाथ ही मंदिर चली आई हूँ।

बुद्ध के प्रति अपने विरल समर्पण में तीसरे अनुच्छेद में सम्राज्ञी कोमियों आगे कहती हैं, जो कली खिलेगी जहाँ, खिली/जो फूल जहाँ हैं/जो भी सुख/जिस भी डाली पर/हुआ पल्लवित पुलकित/मैं उसे वहीं पर/अक्षत, अनाघ्रात, अस्पृष्ट, अनाविल/हे महाबुद्ध/अर्पित करती हूँ तुझे।' पौर्वात्य जीवन-दर्शन की यही मार्मिक अपील समूची सृष्टि के कल्याण का निमित्त बनती है। इस विरल आह्वान में सृष्टि की प्रत्येक इकाई की कल्याण कामना समाहित है। यह उस अभिमत का निषेध करती है जो किसी विशिष्ट इकाई या समूह के लिए समष्टि को कुर्बान करने को आतु-उद्यत है। क्योंकि सृष्टि का कल्याण अंततः समूचे अस्तित्व की बरकरारी और खैरियत में ही है। इसलिए समग्र जीवन को महत्व देती हुई वे स्पष्ट घोषणा करती हैं कि जो कली जहाँ भी खिली है, जो फूल जहाँ भी अपने शोभा और गंध निछावर कर रहा है। अथवा जीवन से जुड़ा जो भी सुख जिस भी डाल पर पल्लवित और पुलकित है, उन सबको आधुनिक हिन्दी काव्य वहीं-वहीं बिना कोई क्षति पहुँचाए बिना कोई आघात किए यहाँतक कि बिना स्पर्श किए ही

उसी प्रकृत पवित्रता के साथ हे महाबुद्ध मैं आपको समर्पित करती हूँ। आचार्य रजनीश ने अपने एक प्रवचन में इसे यूँ कहा है कि : संसार के समस्त पुष्प जहाँ भी खिले हैं वे वहीं आपके सम्मान में झुक जाएं। ऐसे अपूर्व समर्पण के लिए मनीषी अज्ञेय ने जो चार शब्द प्रयुक्त किये हैं वे हर लिहाज से अनूठे हैं : अक्षत् अनाघ्रात, अस्पृष्ट अनाविल। हिंसा की समूची कर सैद्धान्तिकी के विरूद्ध जैसे ये चार शब्द सच्ची अहिंसा की अवधरणा के चतुष्पाद की तरह हैं।

आज का समय जीवन की मूल छवियों को ध्वस्त करने का समय है। इन दिनों यह लगभग मान लिया गया है कि किसी को बिना क्षति पहुँचाए बिना किसी पर आघात किए. बिना कोई छेड़छाड़ किये जीवन व्यवहार संभव ही नहीं है। चीजों की स्वायत्तता, उनकी स्वतंत्रता और समता का जैसे कोई मूल्य ही न हो। आज चीजें अपने विरल मौलिक स्वरूप को तजने-खोने को विवश हैं। जैसे व्यक्तित्वहीन होकर किसी के आगे अनन्य समर्पण कर देने अथवा किसी के निमित्त शोभा सज्जा की वस्तु बन कर रह जाना ही जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। आज जीवन के उपादान अपनी नैसर्गिक इयत्ता खो रहे हैं। इस घालमेल में चीजें अपनी मौलिकता खोकर लगातार नकली होती जा रही हैं। वह व्यक्तित्व स्वरूप, भाषा, भूषा, भाव, भंगिमा कुछ भी हो सकता है। जीवन का मूलभूत सौन्दर्य और उसकी गुणवत्ता आज अतीत का आख्यान भर होकर रह गये हैं। ; ऐसे में सम्राज्ञी कोमियों के मार्फ अज्ञेय हमारे सम्मुख जीवन की गरिमा का एक विरल पाठ प्रस्तुत करते हैं। यह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है कि जापान आज भी जीवन की उसी गरिमामयी गुणवत्ता, मूल्य परकता और मानवीयता पक्षधरता की अद्‌भुत मिसाल पेश कर रहा है। जापान में कुछ वर्षों पहले आई भयंकर सुनामी के दौरान जापानी नागरिकों ने जिस धैर्य, बुजुर्गो और असहायों के प्रति जिस प्रतिबद्ध मानवीयता व करूणा तथा सरकारी संसाधनों के प्रति जिस एकनिष्ठ ईमानदारी का प्रदर्शन किया था, उसे देख सुन समूची दुनिया का सिर जापान के सामने श्रद्धा से झुक गया। कोमियो चूँकि उसी गौरवमयी परम्परा की प्रतिनिधि और जीवन विवेक की मिसाल भी हैं, इसलिए कविता के अन्तिम अनुच्छेद में अपने उस अनूठे अर्पण को चरम ऊँचाइयों पर पहुँचाते हुए वे कहती हैं कि जीवन के तमाम सौन्दर्य, तमामतर सुख जिस भी डाली पर खिल कर जीवन के प्याले को जहाँ-जहाँ भर रहे हैं और अपने सुन्दर आनंद निमिषों के साक्षी होते हुए जीवन देवता के प्रति नैवद्य अर्पित कर रहे हैं: हे विगत (जो बीत चुका है) के आगत (जो आने वाला है) के और इन दोनों के मध्य ठहरे वर्तमान के पद्मकोश हे महाबुद्ध मैं उन्हें तुम्हें अर्पित करती हूँ।'

टिप्पणी

1.8 अच्छा खंडित सत्य

अच्छा
खंडित सत्य
सुघर नीरन्ध्र मृषा से,
अच्छा
पीड़ित प्यार सहिष्णु
अकम्पित निर्ममता से।
अच्छी कुण्ठा रहित इकाई
साँचे-ढले समाज से,
अच्छा
अपना ठाठ फकीरी
मँगनी के सुख-साज से।
अच्छा
सार्थक मौन व्यर्थ के श्रवण-मधुर भी छन्द से।
अच्छा
निर्धन दानी का उघडा उर्वर दुख
धनी सूम के बंझर धुआँ-घुटे आनन्द से।
अच्छे अनुभव की भट्टी में तपे हुए कण दो कण
अन्तर्दृष्टि के,
झूठे नुस्खे वाद, रूढि, उपलब्धि परायी के प्रकाश से
रूप-शिव, रूप सत्य की सृष्टि के। - 'अज्ञेय'

1.9 योगफल

सुख मिला :
उसे हम कह न सके।
दुख हुआ:
उसे हम सह न सके।
संस्पर्श बृहत् का उतरा सुरसरि-सा:
हम बह न सके।
यों बीत गया सब : हम मरे नहीं, पर हाय कढ़ाचित्
जीवित भी हम रह न सके। - अज्ञेय

1.10 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अज्ञेय जी को किस काव्यकृति के लिए भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया गया?
2. अज्ञेय जी किस विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य तथा भाषा अनुशीलन विभाग के निदेशक 'अज्ञेय' रहे?
3. अज्ञेय जी का पूरा नाम क्या है?
4. अज्ञेय की अनुभूति पर किन विचार-दृष्टियों का प्रभाव है? सात-आठ पंक्तियों में विचार कीजिए।
5. 'अज्ञेय का नव्य रहस्यवाद आध्यात्मिक नहीं है।' इस कथन पर अपने विचार दीजिए।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. हिन्दी काव्य साहित्य में अज्ञेय के योगदान पर विस्तार से उल्लेख कीजिए।
2. 'अज्ञेय जी ने हिन्दी प्रयोगवादी काव्यधरा का प्रवर्तन किया था।' उनकी रचनाओं के आधर पर इस कथन को स्पष्ट कीजिए?
3. अज्ञेय जी का जीवन परिचय 'जन्मकाल, समय, जन्म-स्थान, माँ-बाप, शिक्षा' के आधर पर लिखिए।
4. अज्ञेय जी का जीवन परिचय 'कवि के समय की साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियाँ' के आधर पर लिखिए।
5. अज्ञेय के जीवन-दर्शन पर सात वाक्यों में विचार कीजिए?

♦♦♦♦♦

इकाई 2

रामधरी सिंह 'दिनकर'

संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 जीवन परिचय
2.3 साहित्यिक अवदान
2.4 यौवन की हुंकार
2.5 राष्ट्रीय चेतना
2.6 विषमताओं का चित्रण
2.7 आक्रमण के समय राष्ट्र चेतावनी
2.8 काव्यगत विशेषताएँ
2.9 कलापक्षीय विशेषताएँ
2.10 आलोकधन्वा
2.11 परंपरा
2.12 पाप
2.13 राजर्षि अभिनन्दन
2.14 विपथगा
2.15 मूल्यांकन
2.16 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

विद्रोह विस्फोट तथा ओज के साथ-साथ सौन्दर्य और व्यंग्य प्रधन शृंगार कवि के रूप में दिनकर जी का व्यक्तित्व निराले विरोधभास को लेकर उपस्थित हुआ। दिनकर की कला में सपनों का सौंदर्य नहीं है, अपितु जीवन के संघर्षों का सौंदर्य है। उनकी कविता आधुनिक युग का श्रेष्ठ दर्पण है। दिनकर उन्मुक्त स्वभाव के व्यक्ति थे। उनमें कला का साज-शृंगार करने की प्रवृत्ति नहीं थी, वरन अनुभूतिजनित स्वाभाविक तीव्रता को व्यक्त करना ही उन्हें प्रिय था। भारतीय समाज एवं देश की तत्कालीन दशा का यथावत चित्रण और कथाओं में ओजगुण की प्रधनता; उनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ है। वे मुख्यत: जनचेतना के गायक और एक क्रांतिकारी कवि थे। राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करने की दृष्टि से; जो कविताएं उन्होंने लिखी वे भौतिकता व अनैतिकता के पथ पर जा रहे भारतीयों के प्रति रोष उत्पन्न करती हैं और सुप्त मन को झकझोर कर रख देती है।

दिनकर जी का व्यक्तित्व और कृतित्व, दोनों ही, संघर्षों के बीच विकसित हुआ कहा जा सकता है। चिन्तन की प्रौढ़ता भी दिनकर की कविताओं में मिलती है। उनकी रचनाओं में अध्ययन की व्यापकता, चिंतन की गहराई और विचारों की जो परिपक्वता मिलती है, वह हिंदी के इने-गिने कवियों में ही दृष्टिगोचर होती है। इसके साथ ही दिनकर का आलोचक रूप भी अत्यंत प्रत्ययकारी, प्रखर और तत्वान्वेषी है। उनकी आलोचनाएँ साहित्य का मर्म उजागर कर देती हैं।

दिनकर जी सच्चे अर्थों में हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य हैं। उन्होंने अपनी काव्य-कला रूपी ज्योति से सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य को आलोकित कर दिया। जिस प्रकार दिनकर जन जीवन में जागरण और कर्म का संदेश देता है, उसी प्रकार कविवर 'दिनकर' ने भी अपनी काव्य-कति रूपी किरणों से हिन्दी को राष्ट्रीय जागरण और कर्म का संदेश प्रदान किया है।

2.2 जीवन परिचय

राष्ट्रीय भावनाओं के अमर गायम 'रामधरी सिंह दिनकर' का जन्म बिहार प्रान्त के मुंगेर जिले के अन्तर्गत सिमरिया नामक ग्राम में 23 सितम्बर, सन् 1908 ई. को एक साधरण किसान परिवार में हुआ था।

दिनकर जी का जन्म फसरी संवत 1316 के आश्विन महीने में नवरात्र के भीतर बुधवार की रात्रि में हुआ था, जिस आधर पर गणकों ने उनकी जन्मतिथि 30 सितम्बर 1908 निर्धरित की थी और बहुत दिनों तक वही मान्य भी रही। लेकिन पटना के प्रसिद्ध ज्योतिष रामलोचन पाण्डेय ने दिनकर जी की पूजनीया माताजी से साक्षात्कार करके दिनकर जी की जन्मतिथि 23 सितम्बर, 1908 की और अब अंतिम तौर पर यहीं तिथि मान्य है।

जिस साधरण कृषक परिवार में दिनकर जी पैदा हुए वह आज भी सिमरिया में मौजूद है। अभी भी वहाँ पर बाँस के छप्पर से छाया हुआ ईट का खपरैल मकान खड़ा है, जिसमें दिनकर का जन्म हुआ था। दिनकर जी के पिता बाबू रवि सिंह एक साधरण हैसियत के ठेठ किसान थे। वे नित्य मानस का पाठ करते थे, अर्थ लगा-लगाकर और वास-पड़ोस के लोगों को सुनाते थे। किसी को कुछ देते समय वे बहुध कहा करते थे- देना-देना, नहीं देना। दिनकर जी के पितामह श्री शंकर राय भी थोड़ा बहुत पढ़ना-लिखना जानते थे। दिनकर जी के वंश में कई पुश्त पहले भी एक कवि हो चुके थे जिनका नाम था 'भैरवराय'। भैरवराय रचित एक पद्य भी दिनकर जी के अग्रज सुनाते हैं, जो इस प्रकार है:

'भैरव कवि मन भये उदासा,
अइ नगरी के नहिं विश्वाशा।'

टिप्पणी

दिनकर जी भी जब गाँव की पाठशाला के छात्र थे प्राय: हर रोज डेढ़-दो घंटे रामायण का पाठ किया करते थे। दिनकर जी जब हाईस्कूल के विद्यार्थी थे, तब वे संस्कृत में गीता महाभारत का पाठ भी धड़ाधड़ करने लग गए थे। वे दिन थे दिनकर जी के बचपन तथा उनके कवि जीवन के उषा काल के। इसी गाँव की 'रेणुका' पर दिनकर जी ने अपने पाँव के असंख्य निशान छोड़े थे। यहीं पर उन्होंने कितने ही अभावग्रस्त 'रेती के फूलों' को कुम्हलाते देखा था। यहीं से उनके कवित्व ने ललकार भरी आवाज दी थी:

'व्योम कुंजों की परी, अयि कल्पने!
भूमि को निज स्वर्ग पर ललचा नहीं,
पा न सकती मृत्ति उड़कर स्वप्न को
शक्ति हो तो आ बसा अलका यहीं।'

उन्होंने सन् 1933 ई. में पटना विश्वविद्यालय में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद उन्होंने 36 आधुनिक हिन्दी काव्य एवं काव्य-शास्त्र रामधरी सिंह 'दिनकर नोटस कुछ दिनों के लिए माध्यमिक विद्यालय में प्रधनाध्यापक का कार्य सम्भाला। इसके बाद दिनकर जी सन 1934 में सरकारी नौकरी में आए और सब-रजिस्ट्रार बन गए। बाद में वे ब्रिटिश सरकार के युटठा प्रचार विभाग में उपनिदेशक नियुक्त किए गए और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तक इसी पद पर कार्य करते रहे। कुछ समय तक इन्होंने बिहार विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष के रूप में भी कार्य किया। रामधरी सिंह दिनकर को सन् 1952 में राज्यसभा कस सदस्य मनोनीत किया गया, जहाँ वे सन् 1962 तक रहे। कुछ समय तक दिनकर जी भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे। उसके पश्चात् वे भारत सरकार के गृह विभाग में हिन्दी सलाहकार के रूप में एक लम्बे समय तक हिन्दी के संवर्धन एवं प्रचार-प्रसार में कार्यरत रहे। दिनकर जी की साहित्यिक प्रतिभा एवं सेवा को सम्मान देते हुए राष्ट्रपति ने उन्हें 'पद्यभूषण' की उपाधि से समानित किया। उन्हें 'साहित्य एकादमी' का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। सन् 1962 में भागलपुर विश्वविद्यालय ने डी.लिट् की उपाधि प्रदान की। इसके पश्चात् सन् 1972 में उनके बहुचर्चित महाकाव्य 'उर्वशी' पर उन्हें 'भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार' से पुरस्कृत किया गया। उन्हें अपने युवा पुत्रं की मृत्यु से बड़ा धक्का लगा। इस प्रकार यह कलाकार सरस्वती का अमर आराधक रहा। वह 24 अप्रैल सन् 1974 को इस नश्वर संसार से चल बसा।

2.3 साहित्यिक अवदान

रामिधरी सिंह दिनकर छायवादोत्तर काल के महान कवि थे। उनकी काव्य-प्रतिभा अद्भुत थी। उनकी कविताओं में अतीत के प्रति प्रेम तथा वर्तमान युग की दयनीय दशा के प्रति असंतोष है। उनका मुख्य विषय अतीत का गौरव गान है तथा प्रगति और निर्माण के पथ पर अग्रसर होने का सन्देश देना है। वैसे दिनकर जी की अधिकांश कविताओं में देश-प्रेम की भावना जागृत है। दिनकर जी शक्ति और पौरूष के कवि हैं। उन्हें प्रगतिवादी कवियों में भी सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। दिनकर जी की काव्यात्मक प्रतिभा ने उन्हें अपार लोकप्रियता प्रदान की। उन्होंने सौन्दर्य प्रेम, राष्ट्रप्रेम, लोक-कल्याण आदि अनेक विषयों पर. काव्य रचना की, किन्तु उनकी राष्ट्रीय भाव पर आधरित कविताओं ने जनमानस को अधिक प्रभावित किया।

दिनकर राष्ट्रवादी कवि हैं, जिन्होंने आजादी से पहले की अपनी कविताओं में देश को आजाद कराने का स्पष्ट आह्वान किया है। दिनकर ने कभी प्रत्यक्षत: अंग्रेजों के खिलाफ न कुछ कहा न लिखा। बस अपनी कविताओं में कभी हिमालय के जरिए तो कभी 'विपथगा' के ब्याज से सब कुछ नष्ट भ्रष्ट

करने का आह्वान करते रहे। बिल्कुल ब्याज-स्तुति की शैली में। कहावत में कहें तो 'कहीं पे निगाहें कहीं पे निशाना'।

जब छायावाद अपने प्रकर्ष पर था और नए कवि पंत, प्रसाद, निराला आदि का अनुगमन कर रहे थे, दिनकर ने अपेक्षाकृत पुराने पड़ चुके 'मैथिलीशरण गुप्त' को अपना काव्य आदर्श बनाया। जन जागरण की इस विचारधरा को प्रखर बनाने का काम दिनकर जी ने किया। उनकी कविताओं में ओज है, तेज है, और अग्नि जैसा तीव्र ताप है।

2.4 यौवन की हुंकार

दिनकर जी की हुंकार में यौवन की हुंकार का समावेश है। यह कवि के राष्ट्रीय विचारों से ओत-प्रोत ऐसी रचना है, जिसमें क्रान्ति और विद्रोह की आग बरसाने वाली कविताएँ संकलित हैं।

2.5 राष्ट्रीय चेतना

दिनकर जी के काव्य में राष्ट्रीय चेतना का जयघोष सुनाई देता है। उसमें युग की चेतना की सबल अभिव्यक्ति हुई है। अपनी हिमालय कविता में उन्होंने भारतपुरूष को जगाने का प्रयास किया है

'ले अंगड़ाई उठ हिले धरा, कर निज विराट स्वर में निनाद,

तू शैलराठ! हुंकार भरे, फट जाए कुहा, भागे प्रसाद।'

2.6 विषमताओं का चित्रण

दिनकर जी ने अपने काव्य में स्वतन्त्रता के पश्चात् देश की स्थिति पर भली प्रकार दृष्टिपात किया है। उन्होंने जनजीवन में व्याप्त आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विषमताओं का चित्रण किया है। उन्होंने उन नेताओं पर करारा व्यंग्य किया है, जो दिल्ली के रेशमी नगर में रहते हैं आझैर अपने देशवासियों की तरु नहीं देखते, जो फटे चिथड़े लटकाए घूमते रहते हैं। नेताओं को सम्बोधित करते हुए दिनकर जी लिखते हैं

'सकल देश में हालाहल है, दिल्ली में हाला है
दिल्ली में रोशनी, शेष भारत अँधियारा है
मखमल के परदों के बाहर फूलों के उस पार
ज्यों का त्यों खड़ा है आज भी मरघट सा संसार।'

2.7 आक्रमण के समय राष्ट्र चेतावनी

दिनकर जी ने देश की सीमाओं पर आक्रमण के समय जन-जीवन में व्याप्त आलस्य और अकर्मण्यता को दूर करने की चेतावनी दी और खेतों, कारखानों और बाजारों में तत्परता के साथ अपना कार्य रने की सलाह भी दी है। उनका मत है कि युद्ध केवल सीमाओं पर ही नहीं होता, अपितु उसके लिए सभी जगह मोर्चे खुले हुए रहते हैं

सरहल पर ही नहीं मोरचे खुले हुए हैं
खेतों में खलिहान, बैठकों, बाजारों में
जहाँ कहीं आलस्य, वहीं दुर्भाग्य देश का।

डॉ. दारिका प्रसाद सक्सेना के शब्दों में - 'दिनकर का अधिकांश काव्य बलिदान और का अमर राग है। इसमें अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध क्रान्ति एवं विद्रोह उत्पन्न हवाला सिंहनाद है और अकर्मण्यता

टिप्पणी

एवं आलस्य की रात्रि को नष्ट करके जन-जन में ण्यता, शूरता एवं पराक्रमशीलता के प्रभात को लाने वाले दिवसमणि का दिव्यलोक है।'

उन्होंने अपनी प्रखर लेखनी से सर्वप्रथम हिन्दी कविता को छायावाद को सम्मोहन से स्त किया और उसमें राष्ट्रवादी तथा प्रगतिशील विचारों को स्थान दिया। सत्यता यह है कि कर जी आरंभ से ही लोक के प्रति समर्पित कवि रहे। नवीन चेतना और जनमानस में देश-भक्ति की लहरें उठाने वाले दिनकर जी अपने युग के प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी लेखनी में ऐसी शक्ति है जो धूल को भी स्पर्श करके सोना बना देती है। इस प्रकार काव्य संसार की विकास यात्र में दिनकर जी का अपूर्व योगदान है।

कृतियाँ

दिनकर जी की काव्य कृतियों का विवरण इस प्रकार है

रेणुका

यह दिनकर जी की प्रथम प्रकाशित काव्य संग्रह है। इसमें कवि ने अपने युग की परिस्थितियों के विविध चित्र प्रस्तुत करते हुए, अपने हृदय में सोई हुई विद्रोह की चिंगारी का प्रथम परिचय दे दिया है।

हुंकार

यह दिनकर जी की राष्ट्रीय और क्रान्तिकारी कविताओं का संग्रह है। रसवन्ती यह प्रेम और श्रृंगार सम्बन्धी कविताओं का संग्रह है। छन्दगीत इसमें कवि के आध्यात्मिक मुकतक संग्रहीत हैं। सामधेनी यह सामाजिक चेतना, स्वदेश प्रेम तथा विश्व वेदना सम्बन्धी कविताओं का संकलन है।

कुरूक्षेत्र

महाभारत की कथा को आधर बनाकर शान्ति और युद्ध की समस्या पर विचार करने वाला प्रसिद्ध प्रबंध काव्य है। रश्मिस्थी महाभारत के कर्ण के जीवन पर आधरित प्रबंध काव्य है।

उर्वशी

यह दिनकर जी का विख्यात महाकाव्य है। इसमें उर्वशी और पुरूरवा की पौराणित प्रेम कथा को कवि ने नवीन चिन्तन के साथ प्रस्तुत किया है।

परशुराम की प्रतीक्षा

सन् 1962 में भारत पर चीन के आक्रमण के संबंध पर लिखी गई दिनकर जी की अति महत्वूपर्ण काव्यकृति है।

इनके अतिरिक्त दिनकर जी की 'चक्रवाल', 'धूप-छाँव', 'हारे को हरिनाम', 'नीम के पत्ते', 'नील-कुसुम', 'सीपी और शंख', 'बन्धु', 'इतिहास के आँसु', मृत्ति तिलक', 'कोयला और कवित्व' आदि अन्य काव्य कृतियाँ हैं। दिनकर जी की गद्य रचनाओं में उनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' उल्लेखनीय है।

2.8 काव्यगत विशेषताएँ

दिनकर की कविता में काव्यानुभूति और अभिव्यक्ति का सुन्दर समन्वय है। वे क्रान्तिकारी कवि हैं। यही कारण है कि उनके विद्रोहशील व्यक्तित्व को अपने देश के पौराणिक आख्यानों में जो असंगतियाँ दिखाई दी, उसे मिटाने के लिए उन्होनें 'कुरूक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' जेसी कथाकाव्यों की रचना की। पहली रचना कुरूक्षेत्र तो वस्तुतः कथाकाव्य नहीं, वरन् विचार काव्य है, क्योंकि उसमें हिंसा और अहिंसा की विचारधराओं का द्वन्द प्रस्तुत किया गया है। 'रश्मिरथी' में सूतपुत्र के रूप में प्रसिद्ध वीर

कर्ण का आख्यान है। जागरित पुरूषार्थ के कवि दिनकर शान्तिप्रियता और अहिंसा की आड़ में फैलने वाली निर्वीयता और अकर्मण्यता को व्यक्ति और राष्ट्र दोनों के लिए घातक मानते हैं। उनके व्यक्तित्व का यह स्वरूप चीनी आक्रमण के समय प्रज्जवलित हो उठा था और उन्होंने 'परशुराम की प्रतीक्षा' शीर्षक रचना उपस्थित की थी।

दिनकर काव्य की विशेषताएँ निम्नांकित हैं

भावपक्षीय विषेषताएँ

दिनकर जी ने कविता को छायावाद के सम्मोहन से मुक्त किया तथा उसमें राष्ट्रवादी और प्रगतिशील विचारों को स्थान दिया। दिनकर जी के काव्य की भावपक्षीय विशेषताएँ निम्नांकित हैं

राष्ट्रीयता का स्वर

दिनकर जी राष्ट्रीय चेतना के कवि हैं। दिनकर जी का मत था कि राष्ट्रीयता हमारा सबसे बड़ा और महान धर्म है और पराधीनता हमारी सबसे बड़ी समस्या। आपकी कृतियाँ त्याग, बलिदान और राष्ट्रप्रेम की भावना से परिपूर्ण हैं। हिमालय के प्रति आह्वान करता हुआ कवि का एक स्वर प्रस्तुत है

'ले अंगड़ाई हिल उठे धरा,
कर निज विराट स्वर में निनाद।
तू शैलराट! हुंकार भरे,
फट जाए कुहा, भागे प्रमाद।'

दिनकर जी ने भारत के कण-कण को जगाने का प्रयास किया है। हिमालय को जगाने के माध्यम से भारतीयों को जगाने का यह प्रयास कितना सार्थक बन पड़ा है

'ओ मौन तपस्यालीन यती,
पल भर कर तू दृगोन्मेष।
रे ज्वालाओं से दग्ध विकल,
है तड़प रहा पद-पद स्वदेश।'

प्रगतिवाद

छायावाद के बाद का सबसे सबल साहित्यिक आंदोलन 'प्रगतिवादी' विचारधरा के दर्शन होते हैं। उन्होंने उजड़ते खलिहानों, जर्जरकाय कृषकों और शोषित मजदूरों का मार्मिक चित्र अंकित किया है। वर्तमान युग की दयनीय दशा पर कवि ने तीव्र आक्रोश प्रकट करते हुए क्रान्ति का शंखनाद किया है

'सूखी रोटी खाएगा जब कृषक खेत में धर कर हला,
तब दूँगी मैं तृप्ति उसे बनकर लोटे का गंगाजल।'

दिनकर जी की 'हिमालय', 'ताण्डव', 'बोधिसत्व', 'कस्मै दैवाय', 'पाटलीपुत्र की गंगा' आदि सभी रचनाएँ प्रगतिवादी विचारधरा पर ही आधरित हैं। प्रेम और सौन्दर्य कवि ने स्वीकार किया है कि राष्ट्रीय चेतना उनके भीतर से नहीं जन्मी, वरन परिस्थितियों के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है। सच तो यह है दिनकर जी सुकुमार कल्पनाओं के कवि हैं। कोमलता और सुकुमारता से उनकी कोई काव्य भूमि अछूती नहीं है। उनके द्वारा रचित काव्यग्रन्थ 'रसवन्ती' की कविताएँ प्रेम और सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं।

उनका उर्वशी काव्य तो प्रेम और सौन्दर्य का खजाना है। सुकुमार कल्पना का यह कवि 'उर्वशी' की रचना से पूर्व अपने सहज भावों पर रोक लगाता रहा है, किन्तु उर्वशी उसके हृदय का वास्तविक चित्र प्रस्तुत कर सकी है। रस निरूपण दिनकर जी को प्रायः वीर रस का कवि माना जाता रहा है। वास्तव

टिप्पणी

में ओज के क्षेत्र में दिनकर जी ने महानतम कार्य किए हैं। किन्तु उनके काव्य में श्रृंगार और करूण रस को भी उतना ही महत्व प्राप्त है।

2.9 कलापक्षीय विशेषताएँ

भावपक्षीय विशेषताओं के साथ ही दिनकर जी का कलापक्ष भी बड़ा सबल और प्रौढ़ है। उनके काव्य में कलापक्ष की निम्नलिखित विशेषताएँ दर्शनीय हैं

परिष्कृत खड़ीबोली

दिनकर जी भाषा के मर्मज्ञ हैं। उनकी भाषा उनके व्यक्तित्व से प्रभावित है। उनकी भाषा परिष्कृत खड़ी बोली है। वह बोलचाल की भाषा से थोड़ी अलग है। छायावादी कवियों के समान उनकी भाषा कोहरे में डूबी हुई नहीं है। वरन् पूरी तरह स्पष्ट है और उसमें भावों को व्यक्त करने की अद्‌भुत क्षमता है। उसमें चित्रात्मकता, धवन्यात्मकता और मनोहारिता है।

अलंकार योजना

दिनकर जी के काव्य में अलंकार बाहर से थोपे हुए नहीं है। अनुभूति को साकार रूप देने के लिए वे बिना किसी प्रयास के प्रयुकत हुए हैं। उन्होंने मुख्य रूप से उपमा, रूपक. द्य उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। उपमा अलंकार का एक नया रूप इन पंक्तियों में प्रस्तुत है

'लदी हुई कलियों से मादक टहनी एक नरम सी।
यौवन की वनिता सी भोली गुमसुम खड़ी शरम सी।'

छन्द-योजना

दिनकर जी के काव्य में विविध प्रकार के छन्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। प्रारम्भ में उन्होंने मुक्त छन्द को स्वीकार नहीं किया, किन्तु समय के साथ-साथ उनकी विचारधरा में परिवर्तन आया और वे छन्द बन्धन से मुक्त कविता को ही वास्तविक काव्य वंदना करने लगे।

दिनकर जी के काव्यशिल्प के संबंध में डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' की ये पंक्तियाँ विशेष रूप से दृष्टव्य हैं- 'दिनकर के सम्पूर्ण कार्यों पर दृष्टि डालने के उपरान्त यह स्वीकार करना पड़ता है कि भाषा के व्यक्तित्व के साथ-साथ विविध छन्दों की राग माधुरी उनकी कविताओं में पूरी-पूरी मिलती है। उनकी व्यंजनामयी सरल वाणी में राष्ट्र का स्वर गूंजता है। उनके भाव, भाषा और छन्दों में स्वदेश की मिट्टी की वह गन्ध गूंजती है जो सच्चे प्रगतिवाद को नवचेतना प्रदान करती है।श

2.10 आलोकधन्वा

ज्योतिर्धर कवि मैं ज्वलित सौर-मण्डल का,

मेरा शिखण्ड अरूणाभ, किरीट अनल का।

रथ में प्रकाश के अश्व जुते हैं मेरे,

किरणों में उज्जल गीत गूंथे हैं मेरे।

मैं उदय-प्रान्त का सिह प्रदीप्त विभा से,

केसर मेंरे बलते हैं कनक-शिखा से।

ज्योतिर्मयि अन्त:शिक्षा अरुण है मेरी,

टिप्पणी

हैं भाव अरुण, कल्पना अरूण है मेरी।
पाया निसर्ग ने मुझे पुण्य के फल-सा,
तम के सिर पर निकला मैं कनक-कमल सा।
हो उठा दीप्त धरती का कोना-कोना,
जिसको मैने छू दिया हुआ वह सोना।
रंग गयी घास पर की शबनम की प्याली,
हो गयी लाल कुहरे की झीनी जाली।
मेरे दृग का आलोक अरूण जब छलका,
बन गयी घटाएँ विम्ब उषा-अंचल का।
उदयाचल पर आलोक-शरासन ताने
आया मैं उज्जवल गीत विभा के गाने।
ज्योतिर्धनु की शिंजिनी बजा गाता हूँ,
टंकार-लहर अम्बर में फैलाता हूँ।
किरणों के मुख में विभा बोलती मेरी,
लोहिनी कल्पना उषा खोलती मेरी।
मैं विभा-पुत्र, जागरण गान है मेरा,
जग को अक्षय आलोक दान है मेरा।
कोदण्ड कोटि पर स्वर्ग लिये चलता हूँ,
कर-गत दुर्तभ अपवर्ग किये चलता हूँ।
आलोक-विशिख से वेध जगा जन-जन को,
सजता हूँ नूतन शिखा जला जीवन को।
जड़ को उड़ने की पाँख दिये देता हूँ,
चेतन के मन को आँख दिये देता हूँ।
दौड़ा देता हूँ तरल अग्नि नस-नस में,
रहने देता बल को न बुद्धि के बस में।
स्वर को कराल हुंकार बना देता हूँ,
यौवन को भीषण ज्वार बना देता हूँ।
शुरों के दृग अंगार बना देता हूँ,
हिम्मत को ही तलवार बना देता हूँ।
लोहू में देता हूँ वह तेज रवानी,
जूझती पहाड़ों से हो अभ्य जवानी।

रामधरी सिंह 'दिनकर'

टिप्पणी

मस्तक में भर अभिमान दिया करता हूँ,
पतनोन्मुख को उत्थान दिया करता हूँ।
म्रियमाण जाति को प्राण दिया करता हूँ,
पीयूष प्रभा-मय गान दिया करता हूँ,
जो कुछ ज्वलन्त हैं भाव छिपे नर-नर में,
है छिपी विभा उनकी मेरे खर शर में।
किरणें आती है समय-वक्ष से कढ़ के,
जाती हैं अपनी राह धनुष पर चढ़ के।
हूँ जगा रहा आलोक अरूण बाणों से,
मरघट में जीवन फूंक रहा गानों से।
मैं विभा-पुत्र, जागरण गान है मेरा,
जग को अक्षय आलोक दान है मेरा।

2.11 परंपरा

परंपरा को अंधी लाठी से मत पीटो
उसमें बहुत कुछ है
जो जीवित है
जीवन दायक है
जैसे भी हो
ध्वंस से बचा रखने लायक है
पानी का छिछला होकर
समतल में दौड़ना
यह क्रांति का नाम है
लेकिन घाट बांध कर
पानी को गहरा बनाना
यह परम्परा का नाम है
परम्परा और क्रांति में
संघर्ष चलने दो
आग लगी है, तो
सूखी डालों को जलने दो
मगर जो डालें
आज भी हरी हैं

रामधरी सिंह 'दिनकर'

उन पर तो तरस खाओ
मेरी एक बात तुम मान लो
लोगो की आस्था के आधर
टुट जाते है
उखड़े हुए पेड़ो के समान
वे अपनी जड़ों से छूट जाते है
परम्परा जब लुप्त होती है
सभ्यता अकेलेपन के
दर्द मे मरती है
कलमें लगना जानते हो
तो जरूर लगाओ
मगर ऐसी कि फलों में
अपनी मिट्टी का स्वाद रहे
और ये बात याद रहे
परम्परा चीनी नहीं मधु है
वह न तो हिन्दू है, ना मुस्लिम

इस कविता में दिनकर ने परंपरा के संबंध में अपनी मान्यताओं को व्यक्त किया है।

परंपरा को अंधी लाठी से मत पीटो
उसमें बहुत कुछ है, जो जीवित है
जीवन दायक है
जैसे भी हो, ध्वंस से बचा रखने लायक है

परंपरा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कुछ रीति-रिवाज आदर्श मूल्य, आत्म विश्वास एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी, दूसरी पीढ़ी से तीसरी पीढ़ी, तीसरी पीढ़ी से चौथी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती रहती है। परंपरा वह लय है जो किसी जाति की धरा को तय करती है, उसके प्रवाह को दिखाती है। परंपरा में ग्रहण और त्याग का विवेक होता है। परंपरा में ग्रहण और त्याग का विवेक होता है। परंपरा की हर चीज हर समय उपयोगी नहीं होती, युग के अनुसार परंपरा कुछ चीजो को छोड़ देती है और कुछ चीजों को लेकर, ग्रहण करके आगे बढ़ जाती है। .

दिनकर कहते हैं, परंपरा को अंधी लाठी से मत पीटो। परंपरा को यह मान लेना कि उसमें जो भी है, कुछ भी उपयोगी नहीं है, वह सब अतीत की चीज है, व्यतीत हो चुकी चीज है, उचित नहीं है। अंधी लाठी से मत पीटो, अर्थात् परंपरा का अंधविरोध न करो। विवेक के साथ परंपरा को ग्रहण करें। उसमें बहुत कुछ ऐसा है जो जीवित है। अभी भी जीवंत है, परंपरा का यह हिस्सा जो जीवंत है, प्रासंगिक है, उपयोगी है और आज जीवन देने वाला है। सकारात्मक हो चाहे जैसे भी हो, वह नष्ट होने से बचा लेने के लायक हो।

टिप्पणी

पाना का छिछला होकर समतल में दौड़ना
यह क्रांति का नाम है, लेकिन घाट बांध कर
पानी को गहरा बनाना, यह परंपरा का काम है
परम्परा और क्रांति में संघर्ष चलने दो
आग लगी है, तो सूखी डालों को जलने दो
मगर जो डालें आज भी कच्ची और हरी हैं
उन पर तो तरस खाओ मेरी एक बात तुम मान लो

दिनकर कहते हैं, पीन का छिछला होकर समतल में दौड़ना क्रांति का नाम है। क्रांति आमूल परिवर्तन का नाम है। आमूल परिवर्तन की प्रक्रिया है। जो कुछ स्थापित व्यवस्था, संस्था, आस्था, मूल्य, विश्वास को उसी रूप में स्वीकार करने की जगह नयी दृष्टि से युग के अनुरूप बनाकर उसमें आमूल बदलाव पैदा करना, युग के अपेक्षाओं के अनुरूप क्रांति है। क्रांति का लक्ष्य कभी सीमि और तात्कालिक होता है और कभी दीर्घ और दूरगाली होता है। यहां दिनकर क्रांति के उस तात्कालिक और सीमित रूप की ही बात करते है और क्रांति परंपरा की अपेक्षा उजाला होता है कम गहरा होता है। प्रवाह उसमें अधिक होता है। परंपरा दीर्घकालिक प्रक्रिया का हिस्सा हो इसलिए यह गहरी होती है और अपेक्षाकृत उसमें प्रवाह परिवर्तन बहुत मंद गति से होता है। ;;; दिनकर कहते हैं, पानी का छिछला होकर समतल में दौड़ना यह क्रांति का नाम है। घाट-घाट कर पानी को गहरा बनाना यह परंपरा का काम है। परंपरा और क्रांति में संघर्ष चलने दो। ;;;; जो विकास की प्रक्रिया है, वह क्रांति एवं परंपरा के बीच संघर्ष की ही प्रक्रिया है और संघर्ष की इस प्रक्रिया से ही राष्ट्र, दुनिया बेहतर हो सकती है। क्योंकि परंपरा को यथावत स्वीकार कर लेना विकास की प्रक्रिया को बाधित करेगा इसीलिए दिनकर कहते हैं कि परंपरा ओर क्रांति में संघर्ष चलने दो।

आग लगी है तो सूखी टहनियों को जलने दो, कोई बड़ा बदलाव हो रहा है, कोई परिवर्तन न हो रहा है। तो परिवर्तन में वही टिकेगा, जो टिकने के लायक होगा, जो उपयोगी होगा। प्रासंगिक होगा जो अप्रासंगिक हो, अनुपयोग है, उसका नष्ट हो जाना ही उचित है। मगर जो टहनियां आज भी कच्ची ओर हरी है, उन पर तो तरस खाओ। मेरी एक बात तो तुम मान जाओ। परंपरा के वे हिस्से जो आज भी उपयोगी हैं, काम लायक हैं, विकासमान है, प्रगतिशील हैं, उनको बनाये रखने की जरूरत है।

दिनकर कहते है हमारी यह एक बात तो तुम मान जाओ।

परंपरा जब लुप्त होती है, लोगों के आस्था के आधर टूट जाते है। आस्था का आध पर परंपरा ही होती है। आस्था किसी शक्ति, सत्ता या विचारधरा में ऐसा विश्वास है जो यह मानता है कि उसमे हमारा भला ही होगा। आस्था तर्क और प्रश्न से परे होती है आस्था सहस पैदा होती है परंपरा से प्राप्त होती हो या अपनी आंतरिक अनभवों से उपजती हो दिनकर यहां मानते है कि आस्था परंपरा का आधर होती है। जब परंपरा समाप्त हो जाएगी तो लोगों के आस्था के आधर टूट जाऐंगे। आस्था समाप्त हो जाएगी। उखड़े हुए पेड़ों के समान वे अपने जड़ों से छूट जाते है। परंपरा जब लुप्त होती है लोगों को नींद नहीं आती, न नशा किए बिना चौन नहीं मिलती। परंपरा जब लुप्त होती है सभ्यता अकेलेपन के दर्द से मरती है। परंपरा व्यक्ति को अपनी जड़ों के साथ जोड़े रखती है। परंपरा जब समाप्त होगी तो व्यक्ति अपनी जड़ो से उखड़ जाएगा। उसका कोई दस्तित्व नहीं रह जाएगा क्योंकि व्यक्ति परंपरा की वा में ही संपूर्ण होता है। परंपरा के बाहर वो कुछ नहीं होता है। परंपरा जब छूट जाती लोगों को नींद नहीं आती। नींद आने के लिए लोगो को शुकून और शांति की जरूरत होती लेकिन जिसका सब कुछ समाप्त हो जाए, तो फिर उसको नींद नहीं आती है वह नशा सबिना चौन नही आती परंपरा के लोग उसी तरह अभ्यस्त हो जाते है जैसे नशा करने वाले किसी नशे के अभ्यस्त हो जाते हैं।

रामधरी सिंह 'दिनकर'

तीन शब्द ही अतीत, परंपरा और आधुनिकता। अतीत व्यतीत है। बीता हुआ समय है वह नौटकर किसी रूप में उसी रूप में वापस नहीं आता है। वह बीत चुका है परंपरा अतीत थी वह प्रवाहमान धरा है जो समय-समय पर युग की अपेक्षाओं के अनुरूप अपने को नया करती गयी है। कुछ चीजों को छोड़कर गयी है। कुछ नयी चीजों को ग्रहण करती गयी है। परंपरा में अपने आदि स्त्रोत की पवित्रता तो होती ही है, भविष्य के साथ परंपरा अपने को तोड़ती है। परंपरा जब नया करवट लेती है अपने को बदलती है नया रूप ग्रहण करती है, तो ही आधुनिकता का जन्म होता है। अगर आधुनिकता है, सभ्यता है, तो वह परंपरा के साथ ही है। परंपरा के बगैर आधुनिकता या सभ्यता का कोई अस्तित्व नहीं है। आधुनिकता अथवा सभ्यता परंपरा के द्वारा ही अपना अस्तित्व कायम रखती है। इसलिए दिनकर कहते हैं कि परंपरा जब लुप्त होती है, तो सभ्यता अकेलेपन के दर्द से मरती है।

कलमे लगाना जानते हो तो जरूर लगाओ। कुछ पौधें का निर्माण बीज से होता है। कुछ पौधें के तने से कलमे बनायी जाती है। इन्हें रोप दिया जाता है, जिसमें से नये पौधे निकलते है। विदेशी चीजो को विचारों को, मान्यताओं को ग्रहण करना है तो उनको इसमें मनाही नहीं है। दिनकर ये कहते हैं कि लगाओ मगर ऐसे कि फलों में अपनी मिट्टी का स्वाद रहे। उसका संबंध अपने जमीन से जुड़ जाए। वह भारतीय बन जाए। वह बात याद रहे कि परंपरा चीनी नहीं मधु है। चीनी में अपेक्षाकृत कृत्रिमतता होती है, मधु में अपेक्षाकृत स्वाभाविकता होती है। चीनी में चीनी बनने की जो प्रक्रिया है, अपेक्षाकृत कम समय लेने वाली है, मधु बनने की प्रक्रिया अपेक्षाकृत ज्यादा समय लेने वाली है। चीनी किसी एक पदार्थ से बनती है, चीनी गन्ने से बन सकती है। लेकिन मधु किसी एक फूल से नहीं बनता है। मधु के लिए मधुमक्खियाँ न जाने कितने फूलों से रस ग्रहण करती है।

दिनकर कहना चाहते हैं कि परंपरा में बहुलता होती है। परंपरा का जो स्वर है वह उसमें अनेक स्वर है। मधु में अनेकता में एकता विद्यमान है। अनंत फूलों का रस लेकर मधुमक्खियाँ मधु बनाती है। अगर इसको विचारधराओं में ढ़ालने की कोशिश की जाए, तो चीनी बहुत कुछ व्यक्तिवाद की विचारधरा की हो जाएगी और मधु समाजवाद की विचारध गरा का प्रतीक हो जाएगी।

वह न तो हिंदु है, न मुस्लिम है, न द्रविण है, न आर्य है, न परंपरा का हर प्रहरी फुरी का शंकराचार्य है। परंपरा के उसी बहुलतावादी स्वरू की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। दिनकर की परंपरा न तो हिंदू है, न मुस्लिम है, न द्रविण है, न आर्य है। अर्थात् भारत की जो परंपरा है, उसमें असंख्य जातियों के रीति-रिवाज, आचार, मूल्य, मान्यताएं, विश्वास समाहित है और इस रूप में समाहित हैं, कि उनमें से किसी को साफ-साफ अलग नहीं किया जा सकता है। वो सब मिलकर भारतीय परंपरा है। परंपरा की रक्षा उन्हीं से होती है जो परंपरा को आदि मानते हैं। जो परंपरा के रस को और मधुर बनाते हैं, और ऐसे लोग पूरी शंकराचार्य नहीं है हर प्राणी अर्थात् परंपरा में शास्त्रीय मान्यताओं के लिए जगह कम है। परंपरा लोक सम्मत होती है। लोक से रस ग्रहण करती है, लोक से प्राण ग्रहण करती है। दिनकर का संकेत उसी और है। इस कविता में दिनकर ने भारतीय बहुलतावादी स्वर, उसमें भीतर निहित मूल्यों को परंपरा के तत्व के रूप में रेखांकित किया है।

2.12 पाप

मानव है वह जो गिरा है पाप-पंक में,
सन्त है जो रो रहा ग्लानि-परिताप से।
किन्तु, जो पतन को समझ ही न पाता है,
राक्षस है, दोष कर रोष भी दिखाता है।

टिप्पणी

2.13 राजर्षि अभिनन्दन

जन-हित निज सर्वस्व दान कर तुम तो हुए अशेष;
क्या देकर प्रतिदान चुकाए ऋषे! तुम्हारा देश?
राजदंड केयूर, क्षत्र, चामर, किरीट, सम्मान;
तोड़ न पाए यती! ध्येय से बंध तुम्हारा ध्यान!
ऐश्वर्यों वके मोह-कुंज में भी धीरता डोली,
तुमने तो की ग्रहण देवता! केवल अक्षत-रोली।
जय कामना-जयी! व्रतचारी! मधुकर चम्पक-वन के!
जय हो अभिनव मस्त भव्य भारत के राजभवन के!
गत की तिमिराच्छन्न गुफा में शिखा सजानेवाले!
जय जीवित, उज्जवल अतीत की ध्वजा उठानेवाले!
ऋषे! मरेगा कभी न भारतवर्ष तुम्हारे मन का,
अब तो वह बन रहा ध्येय जग भर के अन्वेषण का।
टूट रही परतें, स्वरूप अपना घुलता जाता है,
मन्द-मन्द मुदित सरोज का मुख खुलता जाता है।
मन्द-मन्द उठ रही हमारी ध्वजा धर्म की, बल की,
विभा नर्मदा-कावेरी की, प्रभा जहुजा-जल की।
क्षमा, शान्ति, करूणा, ममता, ये सब आकार धरेंगे,
शमन किसी दिन हलाहल का जग में हमीं करेंगे।
संस्कृति से संपृक्त यहाँ विज्ञान मुक्त-दव होगा,
हुआ नहीं जो कहीं और, भारत में सम्भव होगा।
एक हाथ में कमल, एक में धर्मदीप्त विज्ञान,
ले कर उठनेवाला है धरती पर हिन्दुस्तान।
(1955 ई.) (स्वर्गीय राजर्षि पुरषोत्तमदास टंडन के अभिनन्दन में)

2.14 विपथगा

झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन,
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन
मेरी पायल झनकार रही तलवारों की झनकारों में
अपनी आगमनी बजा रही मैं आप क्रुद्ध हुंकारों में!
मैं अहंकार सी कड़क ठठा हन्ति विद्युत की धरों में,

टिप्पणी

बन काल-हुताशन खेल रही पगली मैं फूट पहाड़ों में,
अंगड़ाई में भूचाल, सांस में लंका के उनचास पवन!
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन!
मेरे मस्तक के आतपत्र खर काल-सर्पिणी के शत फन,
मुझ चिर- कुमारियों के ललाट में नित्य नवीन रूधिर-चन्दन
आँजा करती हूँ चिता-धूमा का दृग में अंध तिमिर-अंजन,
संहार-लापात का चीर पहन नाचा करती मैं छूम-छनन!
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन
पायल की पहली झमक, सृष्टि में कोलाहल छा जाता है
पड़ते जिस ओर चरण मेरे, भूगोल उधर दब जाता है।
लहराती लपट दिशाओं में, खलभल खगोल अकुलाता है,
परकटे विहाग-सा निरवलम्ब गिर स्वर्ग नरक जल जाता है,
गिरते दहाड़ कर शैल-श्रृंग मैं जिधर फेरती हूँ चितवन!
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन
रस्सों से कसे जबान पाप-प्रतिकार न जब कर पाते हैं,
बहनों की लुटती लाज देखकर काँप-कांप रह जाते हैं,
पी अपमानों के गरल-घूट शासित जब ओठ चबाते हैं,
जिस दिन रह जाता क्रोध मौन, मेरा वह भीषण जन्म लगन
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन
पौरूष को बेडी डाल पाप का अभ्य रास जब होता है,
ले जगदीश्वर का नाम-खडग कोई दिल्लीश्वर धेता है,
धन के विलास का बोझ दुखी-दुर्बल दरिद्र जब ढोता है,
दुनियां को भूखों मार भूप जब सुखी महल में सोता है,
सहती कब कुछ मन मार प्रजा, कसमस करता मेरा यौवन
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन
श्वानों को मिलते दूध - वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं,
युवती के लज्जा वासन बेच जब ब्याज चुकाए जाते हैं,
मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं,
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमंत्रण!
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन

रामधरी सिंह 'दिनकर'

टिप्पणी

डरपोक हुकूमत जुल्मों से लोहा जब नहीं बजाती है,
हिम्मतवाले कुछ कहते हैं, तब जीभ तराशी जाती है,
उलटी चालें ये देख देश में हैरत-सी छा जाती है,
भट्ठी की ओदी आंच छिपी तब और अधिक धुन्धुआती है,
सहसा चिंघार खड़ी होती दुर्गा मैं करने दस्यु-दलन!
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन
चढ़कर जूनून-सी चलती हूँ, मृत्युंजय वीर कुमारों पर,
आतंक फैल जाता कानूनी पार्लमेंट, सरकारों पर,
'नीरों' के जाते प्राण सूख मेरे कठोर हुंकारों पर,
कर अट्टहास इठलाती हूँ जारों के हाहाकारों पर,
झंझा सी पकड़ झकोर हिला देती दम्भी के सिंहासन!
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन
मैं निस्तेजों का तेज, युगों के मूक मोन की बानी हूँ,
दिल-जले शासितों के दिल की मैं जलती हुई कहानी हूँ,
सदियों की जब्ती तोड़ जगी, मैं उस ज्वाला की रानी हूँ,
मैं जहर उगलती फिरती हूँ, मैं विष से भरी जवानी हूँ,
भूखी बाघिन की घात घूर, आहत भुजंगिनी का दंसन।
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन
जब हुई हुकूमत आँखों पर, जनमी चुपके मैं आहों में,
कोड़ों की खाकर मार पत्नी पीड़ित की दबी कराहों में,
सोने-सी निखर जवान हुई तप कड़े दमन के दाहों में,
ले जान हथेली पर निकली मैं मर-मिटने की चाहों में,
मेरे चरणों में खोज रहे भय-कम्पित तीनों लोक शरण।
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन
असि की नोकों से मुकुट जीत अपने सिर उसे सजाती हूँ,
ईश्वर का आन छीन कूद मैं आप खड़ी हो जाती हूँ,
थर-थर करते कानून-न्याय इङ्गित पर जिन्हें नचाती हूँ,
भयभीत पातकी धर्मों से अपने पग मैं धुलवाती हूँ,
सिर झुका घमंडी सरकारें करती मेरा अर्चन-पूजन।
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन
मुझ विपथगामिनी को न ज्ञात किस रोज किधर से आऊँगी,

मिट्टी से किस दिन जाग क्रुध्द अम्बर में आग लगाऊँगी,
आँखें अपनी कर बन्द देश में जब भूकम्प मचाऊँगी,
किसका टूटेगा श्रृंग, न जानें, किसका महल गिराऊँगी।
निर्बन्ध, क्रूर, निर्मोह सदा मेरा कराल नर्तन गर्जन।
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झनन
अब की अगस्त्य की बारी है, पापों के पारावार! सजग,
बैठे 'विसूवियस' के मुख पर भोले अबोध संसार, सजग,
रेशों का रक्त कृशानु हुआ, ओ जुल्मी की तलवार, सजग,
दुनिया के नीरो, सावधन, दुनिया के पापी जार, सजग!
जाने किस दिन फुकार उठे, पद-दलित काल-सर्पो के फन!
झन-झन-झन-झन-झन-झनन-झननं (ससराम, 1965 ई.)

2.15 मूल्यांकन

दिनकर जी माँ भारती के अमर गायक हैं। रामधरी सिंह 'दिनकर' की गणना आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ कवियों में की जाती हैं हिन्दी काव्य जगत में क्रान्ति, ओज और प्रेम के सर्जक के रूप में उनका योगदान अविस्मरणीय हैं विशेष रूप से राष्ट्रीय चेतना एवं जागृति उत्पन्न करने वाले कवियों में उनका विशिष्ट स्थान है। उनकी भाषा में ओज और भावों में क्रान्ति की ज्वाला है। उन्होंने अपनी क्रान्तिकारी वाणी से सोती हुई भारतीय जनता में चेतना का संचार किया। उनकी कविता में क्रान्ति, ओज और प्रेम की त्रिवेणी प्रवाहित है। अतीत के चित्रं को अपनी भावना के अनुरूप अलंकृत करने की दृष्टि से, कोई भी उनकी समता नहीं कर पाया है। दिनकर विचार और व्यक्तित्व में निहित पौरूष तथा माधुर्य भाव को सच्चाई के साथ अपने काव्य में साकार करता है। उसमें धर्म, दर्शन, राष्ट्रीयता, मानवता, मनोविज्ञान माधर्य और प्रगतिशीलता का अदभत सामंजस्य है। दिनकर ने कभी अपनी भावनाओं से समझौता नहीं किया। समीक्ष्य पुस्तक में संकलित संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ व्यक्तिगत होते हुए भी अधिकांश रूप में कर्तव्यगत हैं। कसौटी राष्ट्रीय उत्कर्ष हैं चिंतन की प्रौढ़ता भी दिनकर की कविताओं में मिलती है। उनकी रचनाओं में अध्ययन की व्यापकता, चिंतन की गहराई और विचारों की जो परिपक्वता मिलती है, हिंदी के इने-गिने कवियों में में ही दृष्टिगोचर होती है। इसके साथ ही दिनकर का आलोचक रूप भी अत्यंत प्रत्ययकारी, प्रखर और तत्वान्वेषी है।

दिनकर जी भारतीय संस्कृति के रक्षक, राष्ट्रीय प्रहरी, क्रान्तिकारी चिन्तक, गरीबों के मसीहा और अपने युग के सच्चे प्रतिनिधि कवि थे। उनका हिन्दी के राष्ट्रीय कवियों में विशिष्ट स्थान है।

2.16 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **छायावादोत्तर काल के 'कुरूक्षेत्र' काव्य के रचयिता का नाम लिखिए।**
2. **दिनकर जी ने अपने काव्य में कौन-सी प्रमुख शैली का प्रयोग किया है?**
3. **दिनकर जी के काव्य में किस रस की प्रधनता है?**

टिप्पणी

4. दिनकर जी के काव्य की दो भावपक्षीय विशेषताएँ लिखिए।
5. रामधरी सिंह दिनकर की रचनाओं में राष्ट्रीय भावना का परिचय दीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. रामधरी सिंह 'दिनकर' का जीवन-परिचय दीजिए तथा उनकी कृतियों पर प्रकाश डालिए।
2. दिनकर जी की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. दिनकर जी का हिन्दी साहित्य में योगदान विस्तारपूर्वक लिखिए।
4. दिनकर जी की प्रमुख काव्यकृतियों का उल्लेख कीजिए।
5. कलापक्षीय विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

♦♦♦♦♦

इकाई 3

कालजयी - भवानी प्रसाद मिश्र

संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 जीवन परिचय
3.3 साहित्यिक अवदान
3.4 रचनाएँ
3.5 काव्यगत विशेषताएँ
3.6 कालजयी
3.7 मूल्यांकन
3.8 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

3.1 प्रस्तावना

भवानी प्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य जगत के उन शिल्पियों में हैं, जिन्होंने अपनी सहजता से नया रूप, नयी दिशा और नया जीवन प्रदान किया। कवि जीवन के आरंभ से ही भवानी प्रसाद मिश्र छायावादी कविता की मूल दृष्टि और काव्य-शिल्प के मुहावरे के प्रति विद्रोही बनकर काव्य सर्जना में प्रवृत्त हुए। उन्होंने अपनी कविता की स्वतंत्र राह स्वयं निर्मित की और किसी भी तरह की देशी-विदेशी काव्य प्रवृत्तियों के अनुकरण से दूर रहे। उनके कवि मन का निर्माण वाल्मीकि, कालिदास, कबीर और सूर, भारतेन्दू और पं. रामनरेश त्रिपाठी की स्वच्छन्दता प्रिय दृष्टि ने किया। राष्ट्रीय जागरण ने उनकी सर्जनात्मकता में देश प्रेम के संस्कारों को बलिष्ठ बनाया और मध्य प्रदेश की प्रकृति ने उनमें अनुराग पैदा किया। वे एक प्रकार से नर्मदा की तप-त्याग-धरा के परशुराम तेज वाले सन्त कवि हैं। इस आधुनिक संत कवि को सत्य कहने और लिखने में ही जीवन की सार्थकता दिखायी देती है। वे किसी भी साहित्यवाद के भीतर बंधकर नहीं लिखते। दरअसल पराधीनता उन्हें किसी तरह की स्वीकार नहीं थी- न वाद की, न अंग्रेजी की, न परायी भाषा की, न अभिव्यक्ति की, न पद सत्ता की। वे सदैव स्थापित व्यवस्था के विरोध में रहे। दलितों-उपेक्षितों दुर्भाग्य के मारे ग्रामीण बच्चों के लिए उन्होंने सदैव संघर्ष किया। फलस्वरूप उनकी कविता आत्मभिव्यक्ति के भीतर आत्मदान और आत्मप्रसाद की कविता है। उनकी रचनाओं में एक ऐसी सरलता और ताजगी है जो आज के किसी अन्य कवि में दिखाई नहीं देती। उनके काव्य की शक्ति किसी असाधरण तत्व पर निर्भर न रहकर, साधरण को साधरण बनाये रखकर हृदय के मर्म को सीध स्पर्श करने में निहित है। कहना न होगा उनमें इकबाल और निराला दोनों की अनुगूंज सुनाई देती है। उनकी कविता में भारतीय मानस अभिव्यक्त हुआ हैं।

3.2 जीवन परिचय

भवानी प्रसाद मिश्र का जन्म होशंगाबाद के टिगरिया नामक गाँव में (29 मार्च, 1913 ई.) में एक पुजारी परिवार में हुआ था। उनके पिता सीताराम मिश्र संस्कारवान व्यक्ति थे। वे हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी तीनों विषयों का ज्ञान रखते थे। रात दिन रामायण का पाठ करते थे और बालक भवानी प्रसाद को कविता सुनाते और याद कराते थे। भवानी प्रसाद की माँ गोमती देवी परोपकारी और वैष्णव संस्कारों की महिला थी। मातृ संस्कारों और पिता के काव्य संस्कारों का प्रभाव भवानी प्रसाद के काव्य संस्कारों पर गहरा है। उनकी मानसिकता का गठन गाँव, नदी पर्वत से हुआ। 'छोटी सी जगह में रहता था, छोटी सी नदी नर्मदा के किनारे, छोटे से पहाड़ विंध्यांचल के आँचल में छोटे से लोगों के बीच। साधरण मध्य वित्त के परिवार में पैदा हआ, साधरण पढा-लिखा और काम भी किए वे भी असाधरण से अछते। मिश्र जी का बचपन बैतूल, सुहागपुर और खण्डवा नगरों में व्यतीत हुआ। उन्होंने जबलपुर को राईटसन कॉलेज में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लेने के कारण तीन वर्षों तक जेल में रहना पड़ा। इसी जेल जीवन में उन्होंने बंगला भाषा का अध्ययन किया। मिश्र जी ने कुछ समय तक वर्ध के महिला आश्रम में अध्यापन किया। फिल्मों में गीत लिखे तथा आकाशवाणी के बम्बई केन्द्र में हिन्दी विभाग के प्रधन पद पर कार्य किया। इसके पश्चात् उन्होंने 'सम्पूर्ण गाँधी वाड्.मय' का सम्पादन किया। मिश्र जी साहित्य जगत में भवानी भाई के नाम से प्रसिद्ध थे। 20 फरवरी 1985 ई. को यह महान आत्मा पंचतत्व में विलीन हो गई।

3.3 साहित्य अवदान

छायावादोत्तर कविता में भवानी प्रसाद मिश्र का नाम अपनी अलग राह और अलग काव्य खोज भावचेतना के कारण एकदम विशिष्ट है। मुझ पर किन कवियों का प्रभाव पडा, यह भी एक प्रश्न है। किसी का

नहीं। पुराने कवि मैंने कम पढ़े, नये कवि जो मैंने पढ़े मुझे जंचे नहीं। निराला प्रसाद और पंत फैशन में थे। ये तीनों ही बडे कवि मुझे लकीरों में अच्छे लगते थे। किसी एक की भी एक पूरी कविता मुझे नहीं भा गयी। अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के कवियों में वर्डसवर्थ और ब्राडनिंग को खूब पढ़ा। इधर रवीन्द्रनाथ प्रिय कवि रहे। वाल्मीकि–कालिदास तथा भक्तिकाल के सन्त कवियों में इनका मन रमा और यह प्रभाव इनके कवि कर्म पर सा दिखाई देता है। वड्र्सवर्थ की एक बात उन्हें बहुत ऊँची कि 'कविता की भाषा यथासंभव बोलचाल की भाषा हो।

मिश्र जी ने बाल्यकाल से ही लेखन कार्य आरम्भ कर दिया था, परन्तु अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'दूसरा तार सप्तक' में प्रथम बार उनकी रचनाओं को पाठकों के सम्मुख आने का अवसर मिला। उन्होंने 'कल्पना' नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया। मध्य प्रदेश कला परिषद ने उन्हें 'शिखर पुरस्कार' तथा दिल्ली प्रशासन कला परिषद ने 'गालिब पुरस्कार' से सम्मानित किया। उनकी कविता में बोलचाल है, संवाद है, एक दूसरे को जोड़ने की ताकत है। वे अपनी कविता में लिखते हैं

'जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख,
ओर इसके बार भी हमसे बड़ा तू दिख।'

मिश्र जी को सन् 1943 ई. में तीन साल की जेल हुई। इसी बीच उन्होंने बांग्ला सीखी कालजयी – भवानी प्रसाद मिश्र का साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रंथों का अध्ययन किया। जो मूर्त और प्रत्यक्ष मानव है वही जन का लक्ष्य है। कविता में वही लिखा जो उनके काव्यानुभव का विषय रहा। झूठी प से सदैव दूर रहे। उनके व्यक्तित्व पर नर्मदा और तप–तेज के प्रतीक परशुराम की नोट का गहरा प्रभाव पड़ा। भवानी भाई पत्रकारिता और कविता में गांधी–विचार दर्शन के जीवन भर श्रद्धावान व्याख्याता रहे। उन्होंने माखनलाल जी की एक बात गाँठ बाँध ली की बारा आसान लिखना छूट न जाए, इसकी सावधनी रखना। किन्तु यह भी ध्यान रखना कि आसान लिखना ध्येय नहीं है। ध्येय है लिखना, मन की बात, भीतर की बात, भीतर से भीतर की बात, और वह इस तरह कि वह न तो सूत्रबद्ध हो न भाष्य। जो मन में न समा सके उसे वाणी तक लाओ। किन्तु जुबांदराजी मत करो। कलम को जीभ मत बनने देना।'

जीवन में जो कुछ स्वस्थ है, मंगलदायक है, आहलादकारी है उसे उभारने एवं प्रचारित–प्रसारित करने के लिए ही इन्होंने काव्य को साधन बनाया है। 'गीत–फरोश' नामक प्रसिद्ध रचना में इन्होंने कवि सम्मेलनों एवं सर्वज्ञ बनने का दावा करने वाले रचनाकारों पर परोक्षता प्रहार किया है। आधुनिक जीवन की यांत्रिकता और ऊब को प्राकृतिक एवं मानवीय सौंदर्य एवं गरिमा से मुक्ति प्राप्त कर सम्पन्न किया जा सकता है, यह विश्वास इनकी रचनाओं में मुखर हुआ है। इस प्रकार मिश्र जी ने अपनी मौलिक लेखनी से हिन्दी साहित्य की अपूर्व सेवा की।

3.4 रचनाएँ

मिश्र जी ने सन् 1930 ई. से काव्य सृजन शुरू किया और तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं में खूब छपते रहे। कवि रूप में उनकी ख्याति 1940 ई. तक फैल गई पर एक साथ बहुतसी कविताएँ 'दूसरा सप्तक' (1951 ई. सं. अज्ञेय) में छपी जिनको पर्याप्त आदर मिला। प्रथम काव्य संग्रह 'गीत फरोश' सन् 1956 ई. में प्रकाशित हो पाया। इस अकेले काव्य संकलन की कविताओं ने उनके कवि की धक जमा दी। आधुनिक हिंदी कविता की विकास यात्रा का यह संकलन एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। गाँधी विचार दर्शन से ओत–प्रोत पाँच सौ कविताओं का संकलन 'गाँधी पंचशती' के नाम से आया।

मिश्र जी की मुख्य काव्य कृतियों का विवरण इस प्रकार है

टिप्पणी

गीत फरोश, अंधेरी कविताएँ, व्यक्तिगत चकित है दु:ख, गांधी पंचशती, खुशबू के शिलालेख बुनी हुई रस्सी, परिवर्तन जिए, त्रिकाल संध्या, अनाथ तुम आते हो, इंद न मम, इन्द्रकुसुम कालजयी, शरीर कविता फसलें और फूल मान सरोवर दिन, सम्प्रति, तुकों के खेल, नीली रेखा तक, जल रही हैं सड़कों पर बत्तियाँ, वे कोहरे मेरे हैं, तूस की आग आदि प्रसिद्ध काव्य संकलन है।

इन्होंने एक प्रबंध काव्य की भी रचना की है। 'कालजयी' नामक यह प्रबंध कृति अशोक की कथा पर आधरित होने से ऐतिहासिक प्रबंध काव्य की श्रेणी में आती है। इसमें एतिहासिक कथा के माध्यम से कवि ने प्रेम-अहिंसा के मानवीय मूल्यों की स्थापना की है।

भवानी प्रसाद मिश्र का सम्पूर्ण काव्य सृजन मानवीय मूल्यों की विश्व दृष्टि का अक्षय भंडार है। देश और काल की सीमाओं को अतिक्रान्त करते हुए वे प्रगतिशील चेतना के तेजस्वी रचनाकार हैं। 'कवि' शीर्षक कविता में उन्होंने कहा है 'कलम अपनी साथ/और मन की बात बिल्कुल ठीक कह एकाध/ यह कि तेरी भर न हो तो कह। और बहते बने सादे ढंग से तो वह।' कहना न होगा कि अन्याय और अत्याचार के सक्रिय विरोध में खड़े इस वि की वाणी में तलवार से ज्यादा पैनी धर है।

3.5 काव्यगत विशेषताएँ

मिश्र जी चिंतन को अनुभूति में फेंटकर प्रस्तुत करने में दक्ष हैं। सहज संवेदना के कवि भवानी प्रसाद मिश्र की कविता भावपक्ष की दृष्टि से अपना विशेष महत्व रखती है। उसमें सहजता, सरलता और निकटता का भाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। उनकी आत्माभिव्यक्ति में भाव उष्मा के साथ आत्म-विस्तार और आत्म परिष्कार के तत्व प्रधन रहते हैं। मूलत: उनकी काव्य संवेदना में गांधी विचार दर्शान के मूलाधरें का विस्फोट है और यह विस्फोट गीतात्मक है। मिश्र जी की कविता में प्रेम की एक पक्षीयता के दर्शन होते हैं। उसमें आकुलता, आँसू अभाव की चर्चा अधिक हुई है।

मिश्र जी मानववादी कलाकार हैं। मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा उनकी अभीष्ट हैं मानववादी भावना काव्य में सर्वत्र समाहित हैं चाहे कवि प्रकृति की दृश्यावली में डूबा हो या विशेष मन:स्थिति में आत्मस्थ हो गया हो। मिश्र जी के काव्य में 'प्रगतिशील चेतना' के भी दर्शन होते हैं। कवि ने अपनी प्रगतिशील चेतना से पूँजीपतियों, सामन्तों और शासकों के अत्याचारों का सजीव वर्णन करके उत्पीडन को साकार किया है। मिश्र जी मानवीय संवेदना और निष्ठा के कवि हैं। मानवीय संवेदना ने कवि की कविता में करूणा और पीड़ा को जन्म दिया है। भवानी भाई निराशावादी न होकर आशावादी हैं। उनकी कविता में यथार्थ की भावना पूर्ण रूप से उजागर हुई है। नयी कविता में वे एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनकी काव्यानुभूति में किसान, मजदूर बच्चे और नारी इन सभी की समस्याओं का दर्द मूल संवेदना में जज्ब होकर सहजता से बोलता है। उन्होंने अपनी काव्यानुभूति का संस्कार स्वाधीनता आंदोलन की मुक्ति चेतना से किया है। अंग्रेज और अंग्रेजितयत, पूँजीवाद और उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और रूसी साम्राज्यवाद पर चोट की है। उनका कथन है 'मैंने अपनी कविता में प्राय: वही लिखा है जो मेरी पकड़ में ठीक आ गया है। दूर की कौड़ी लाने की महत्वकांक्षा भी मैंने कभी नहीं की।' बहुत मामूली रेजमर्रा के सुख-दु:ख मैंने इनमें कहे हैं जिनका एक भी शब्द किसी को समझाना नहीं पड़ता- शब्द टप-टप टपकते हैं फूल से/सही हो जाते हैं मेरी भूल से। लोकजीवन की खरी संवेदना ही उनकी काव्य वस्तु का मूलाधर है। काव्यानुभूति में लोक वेदना का यही संसार घुमड़ता रहता है जैसे

तंग गलियों में कहीं बच्चे खड़े हैं
लाल हैं पर भाग पत्थर से अड़े हैं

कालजयी - भवानी प्रसाद मिश्र

टिप्पणी

धल के हीरे नहीं अब धूल हैं ये
फूल जंगल के नहीं अब शूल हैं ये।

उन्होंने झोंपड़ी और महलों की लड़ाई को समझते हुए लिखा है कि यदि झोंपड़ी मिटेगी तो महल भी नहीं बचेगा–

'एक दिन होगी प्रलय भी
मत रहेगी झोपड़ी मिट जायेगा नीलम निलय भी।'

मिश्र जी ने अपने काव्य में मुख्य रूप से करूण श्रृंगार, वीर, शान्त आदि रसों का रूप से प्रयाग किया है। मिश्र जी प्रकृति के कवि हैं। उन्होंने प्रकृति सौंदर्य के चित्र की गहराई से सहजता और सजीवता से उभारे हैं कि उनमें प्रकृति मोहक और यथार्थ रूप साकार हो उठी है। इस कविता के सौंदर्य संसार में मानव तथा प्रकृति दो नहीं हैं- दोनों में अदैत है। यही उनके चिंतन का काव्यात्मक अद्वैतवाद है। वे नदी की तरह बहना, फूल की सरह खिलना, धूप की तरह फैलना चाहते हैं। विन्धय पर्वत और नर्मदा के वन उनमें विस्तार पाए हए हैं। फलत: जनमन से एकाकार होकर ही इस कविता में शक्ति आई है।- वे ऐसा गाँव देखते रहे हैं

गांव जिसमें झोपड़ी है घर नहीं है
झोपड़ी की फटकियाँ हैं दर नहीं है,
धल उठती है, धुएँ से दम घुटा है
मानवों के हाथ से मानव लुटा है।

पर इस कविता में जो मनुष्य परिभाषित हुआ है वह एकदम मस्त और श्रमी आदमी है। फूल चढ़ाकर हम अपने लघु अस्तित्व को किसी महत्तर के प्रति अर्पित कर देते हैं। भवानी भाई अपनी कविता में इस प्रकृति सन्दर्भ को जगह-जगह अभिव्यक्ति देते हैं

फूल लाया हूँ कमल के क्या करूं इनका
पसारें आप आंचल छोड़ दूँ हो जाए जी हलका।

मिश्र जी ने अपना 'सारा शहर' कविता में वर्तमान त्रासदी का चित्रण किया है। व्यंग्य मिश्र जी की रचनाओं का प्राण है। मिश्र जी की कविताओं में व्यक्तिवादी चेतना, कर्म और स्वाभिमान, अपूर्व जिजीविषा जैसे भाव भी देखने को मिलते हैं। भवानी भाई गाँधीवादी कवि हैं। गाँधी दर्शन अनुभूति के स्तर पर उनके विचारों में घुलमिलकर उनके काव्य में प्रकट हुआ है। उन्होंने अपने 'गाँधी पंचशती' कविता का संग्रह में अपनी गाँधीवादी विचारधरा का भव्य परिचय दिया है। भवानी भाई की काव्य भाषा सहज, सरल, बोधगम्य और स्वभाविक बन पड़ी है। अज्ञेय जी का यह कथन भवानी प्रसाद मिश्र की कविता पर एकदम खरा सिद्ध होता है कि 'काव्य सबसे पहले शब्द है। और सबसे अंत में यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। शब्द का ज्ञान-शब्द की सार्थकता की सही पकड़ ही कृतिकार को कृति बनाता है। ध्वनि, लय, छंद आदि के सभी प्रश्न इसी में से निकलते हैं और इसी में विलय होते हैं। ध्यान देने की बात है कि भवानी प्रसाद मिश्र ने शब्द-साधना को हर कीमत पर बनाये रखा है- उनकी प्रतिज्ञा रही है

शब्दों का सही उपयोग योग है
ओर कल्याणकारी है योग की तरह
शब्द का मनमाना उपयोग भोग है
और विनाशकारी है भोग की तरह।

मिश्र जी के काव्य कथन उनकी काव्यभाषा की विशेषताएँ स्वत: कह देते हैं

टिप्पणी

1. 'अभी बैन
   अभी बान
   अभी बानों के सिलसिले'
2. सवाल यह है कि जो आग छिपी है
   शब्दों में उसे हम इस अंधेरी रात में
   सुलगा सकते हैं कि नहीं।

उन्होंने अपने को संस्कृत की तत्सम शब्दावली से बचाकर रोजाना की बोलचाल की भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। भाषा उनके समक्ष कबीर की भाषा की तरह दासी सी प्रतीत होती है। वास्तव में भाषा की दृष्टि से मिश्र जी का काव्य जन-जन का है। प्रयोगवादी प्रवृत्ति के कारण उन्होंने अधिकांश रूप से छन्द मुक्त कविताएँ लिखी हैं। परंतु उनमें लय और धवन्यात्मकता का पूर्ण ध्यान रखा है। मिश्र जी ने अपने व्यक्तित्व अनुभूति और आस्था के सन्दर्भ में प्रतीकों का प्रयोग किया है। भवानी भाई ने अपनी कविता में विविध प्रकार के बिम्बों को भी अपनाया है। अपने पाठक से हृदय से संवाद करते हुए वे छायावादियों की भांति चित्र मोह में नहीं पड़ते अनायास ही वे सन्नाटा का बिंब ला सकते हैं और नींद से ऊंघते सतपुड़ा के जंगल, नर्मदा के गति बिंब भी। आजादी के बाद के शब्द बिंबों में आंक सकते हैं जैसे

1. बन्द गलियों में कहीं बच्चे खड़े हैं।
2. हाय रे, बचपन तलक सुख से न बीता।
3. जी लोगों ने तो बेच दिए ईमान।
4. आप सभ्य हैं क्योंकि धन से भरी आपकी कोठी।

मिश्र जी ने अपने काव्य में अलंकारों का सहज, सरल और स्वाभाविक प्रयोग किया है। अलंकारों का छली रूप मिश्र जी को मोहित नहीं कर सका। मिश्र जी की भाषा की तरह ही शैली सरल, सहज और प्रवाहमय है।

छायावादोत्तर हिंदी कविता में भवानी प्रसाद मिश्र को संतों की लोकजागरण परंपरा में रखकर ही परखा जा सकता है। सत्य कहने के लिए वे हर तरह का जोखिम उठाने को हर समय तैयार रहते हैं व्यवस्था विरोध में उनका विद्रोही निर्भय रहता है। उनकी कविता का संकल्प यही रहा है कि शब्द को तलवार से ज्यादा पैना बनाना है। गाँव के प्राणी की व्यथा को जन-भाषा में अभिव्यक्ति करना है। शब्द की रक्षा ही मानव की रक्षा है

शब्दकार को
अगर जरूरत पड़े
तो अपने शब्दों पर
मरना चाहिए।

बोलचाल की काव्य भाषा, प्रतीक विधन छंद और लय में भी उनका स्वर अलग सुनाई देता है। वे रूपविधन से ज्यादा विषय वस्तु की महत्ता को स्थान देते हैं। वैचारिक स्वर पर अस्तित्ववाद, अलगाववाद के पश्चिमी दर्शन को अपनी कविता में भटकने तक नहीं देते।

सहज गद्य विन्यास बोलचाल का लहजा और छंदों का खनकता प्रयोग करते हैं। अपनी नात्मक मौलिकता से उन्होंने नयी कविता को नया काव्य मुहावरा दिया है।

3.6 कालजयी

तो उस प्रवाह का नाम सुनो
जो हमको तुमको
भारत को इतना गरिमामय
बना गया,
त्योहार देश में
देशान्तर में
जो ममता का मना गया।
वह है अशोक
सम्राट, मौर्य कुल भूषण
प्रस्थापि प्रवीर;
थी शोभित
पाटलिपुत्र राजधनी जिसकी
सुर-सरित-तीर।
ईर्ष्या-सागर के मन्थन से
संजात सदा सत्ता का मद,
सुख चाहे जितना रहे
नहीं संतोष दृप्त को होता है
जब तक न प्राप्त करले
वह पद
ऐसा कोई
जो सबकी छाती में
भय की ज्वाला भरदे,
जो आस पास की
प्रकृति और जनता को
उसकी गर्वोन्नत
ग्रीवा में गिरकर
एक विनत माला कर दे!
थे बिंदुसार के चार पुत्र

टिप्पणी

लगभग समान वय, बुद्धि, तेज
जो स्वाभिमान के लिए
कभी भी चढ़ सकते थे मृत्यु-सेज।
थे मगधराज भयभीत
कि वे जब जायेंगे,
तो ये चारों अपनी अपनी पर आयेंगे
कारण रण का तब
सिंहासन बन जायेगा
तब एक महाभारत फिर से
इस धरती पर ठन जायेगा।
है मगध राज्य की सीमायें
लगभग असीम
यदि मैं घोषित कर दूं
अधिकारी है सुसीम
तो भी
निष्कंटक राज्य न चलने पायेगा,
यह राज्य-दीप निर्वात न चलने पायेगा।
कुछ नहीं
राजगुरु-परामर्श के बिना
किंतु करते थे वे,
मन में आयी हर द्विविध को
गुरु के आगे धरते थे वे।
तब पूछा, "पुत्रों में सुयोग्यतम
प्रभो, कौन?"
पिंगल आजीवक
समझ गए आशय
क्षण भर वे रहे मौन
फिर बोले, राजन!
उत्तर कल दूंगा,
कुमार आर्य
बैठ सब एक साथ

टिप्पणी

अपना वाहन
अपना आसन
अपना भोजन
परिवेश प्राप्त।"
सब आये
जब आकर बैठ
अपनी सबकी शोभा विशेष,
तब प्रश्न किया फिर राजा ने
गुरु रहे सोचते लव-निमेष।
अनुमान हो गया
कौन किस तरह आया है,
वे समझ गए
श्हर एक दृष्टि से
मँझला पुत्र सवाया है
मँझला अर्थात अशोक
चुना था वाहन राजा का हाथी,
लाया था
माता के हाथों का बना खाद्य
वह बैठा था दूर्वा-दल पर
स्वीकारा स्वर्णासन के बदले
आसन जिसने मूल, आद्य
निर्लिप्त
भूमि पर बैठा था था
भोज्य पात्र में माटी के,
है यह कुमार
हर भाँति योग्य
राजर्षि- योग परिपाटी के।

'कालजयी' भवानीप्रसाद जी का 1978 ई. में प्रकाशित हुआ खंडकाव्य है। इसमें कवि ने सम्राट अशोक को केंद्र में रखा है। सम्राट अशोक इतिहास पुरूष हैं। इतिहास के विख्यात चरित्र! अनेक साहित्यकारों ने इतिहास के ख्यात चरित्रों को केन्द्र में रखकर साहित्यिक रचनाओं का सृजन किया है। इसमें प्रमुख हैं - मराठा छात्रपति शिवाजी महाराजा, संभाजी महाराजा, महाराणा प्रताप, रानी चौनम्मा, लासित बरफुकन, महारानी येसूबाई, बीरसा मुंडा, पृथ्वीराज चौहान आदि अनेक। कभी पौराणिक आख्यान, पात्रों

कालजयी -
भवानी प्रसाद मिश्र

टिप्पणी

ने भी रचनाओं में स्थान पाया है। महाभारत, रामायण, विष्णु पुराण आदि आख्यान एवं कर्ण, द्रौपदी, सीता, राम, भीष्म, शांतनु, गंगादि पात्र प्राय: काव्य के केंद्र में रहे हैं। आधुनिक कालीन, सामाजिक राजनीतिक, सांस्कृतिक मूल्यों में होने वाले अध:पतन के दौरान ऐतिहासिक पौराणिक चरित्र और घटनाएँ महत्वपूर्ण ठहरती हैं। कवियों के लिए ये प्रेरणादायी रहते हैं और पाठकों को अतीत, वर्तमान और भविष्य का अहसास दिलाने की क्षमता रखते हैं। सम्राट अशोक की कलिंग विजय तथा उसके पश्चात् की उसकी मानसिक अवस्था कवि भवानीप्रसाद मिश्र जी के लिए प्रेरणा बने। कवि ने प्राय: अभिव्यक्ति के लिए गीत तथा छोटी कविताओं का रूप ही अपनाया परंतु 'सम्राट अशोक' को केंद्र में रखकर रची रचना 'खंडकाव्य' है। 'कालजयी' में सम्राट अशोक के जीवन का 'कलिंग विजय प्रसंग को चुना है। युद्ध जीतने के बाद की अशोक की मानसिक स्थिति को अभिव्यंजित करना चाहिए, ऐसा मिश्र जी को क्यों लगा होगा? उन्होंने सृजन हेतु 'खंडकाव्य' का रूप ही क्यों स्थापित किया होगा? क्या कारण होंगे कि 'सम्राट अशोक' को ही केंद्र में रखा? अनेक प्रश्न उठ खड़े होते हैं? साहित्य की अध्येता, समीक्षक होने के नाते प्राय: सोच ऐसी रही कि किसी कवि की कविता या रचना का अध्ययन करते समय हमें उसके व्यक्तित्व का पूरा परिचय पाना चाहिए। साथ ही उसके समसामयिक परिवेश को ध्यान में लेना चाहिए। कवि के काव्य मानदंड भी महत्वपूर्ण होते हैं। यदि इन पर सोचें तो 'कालजयी' के सृजन की सोद्देश्यता भी स्पष्ट होती जाएगी। यह रचना 1978 में प्रकाशित हुई है। 26 जून 1975 से 25 मार्चर्च 1977 तक अठारह महीनों की कालावधि आपात्काल की रही। देश की स्थिति नाजुक भी रही थी। 1971-72 भारत और पाकिस्तान का युद्ध, आपात्काल के दरमियान की आर्थिक स्थितियाँ, राजनीतिक उथल-पुथल आदि अनेक स्थितियाँ ऐसी रही हैं कि भवानीप्रसाद मिश्र को मानवीय संवेदना को केंद्र रखने की आवश्यकता महसूस हुई। भवानीप्रसाद जी युग चेतना और युगबोध से संयुक्त कवि हैं। वे अपने समसामयिक परिवेश के प्रति अत्यंत सजग है। जीवन के शाश्वत तत्वों पर उनका विश्वास है। उनमें समष्टि के चिंतन की क्षमता रही है। काव्य के लिए वे अनुभूति को वे बहुत महत्व देते रहे। उनके लिए मानवीय संवेदना भी बहुत मायने रखती थी।

3.7 मूल्याकन

इस प्रकार भवानी प्रसाद मिश्र हिन्दी साहित्य के लिए अनुपम देन है। उन्होंने अपनी सहज और प्रतिभावान लेखनी से हिन्दी जगत को ऐसा मार्ग प्रदान किया, जो नए कवियों के लिए आदर्शा सिद्ध हुआ है। मौलिकता और अछूतेपन के गुणों से उनकी रचनाएँ ओत-प्रोत हैं। उन्होंने अपनी सहज और बेबाक लेखनी से प्रयोगवादी एवं नयी कविता की काव्यधरा को नया जीवन प्रदान किया है। उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह जन-जन के लिए है। इसलिए उनका काव्य जनसाधरण को समर्पित है।

कालजयी- 'भवानीप्रसाद मिश्र'

3.8 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **मिश्र जी के माता-पिता का नाम व जन्म स्थान लिखिए।**
2. **भवानीप्रसाद मिश्र की जीवन दृष्टि पर किस विचारधरा का प्रभाव है?**
3. **भवानीप्रसाद मिश्र के प्रबंध काव्य का नाम लिखिये?**
4. **भवानीप्रसाद मिश्र के रचनाकार व्यक्तित्व की दो विशेषताओं का उल्लेख कीजिए?**
5. **भवानीप्रसाद मिश्र के जीवन का पाँच पंक्तियों में परिचय दीजिए।**

टिप्पणी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मिश्र जी की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. भवानीप्रसाद मिश्र का साहित्य में क्या योगदान है। स्पष्ट कीजिए।
3. भवानीप्रसाद मिश्र के जीवन-परिचय तथा रचनाओं का उल्लेख कीजिए।
4. 'भवानीप्रसाद मिश्र का कवि जनजीवन के संघर्षों को किस रूप में व्यक्त करता है।' चार पंक्तियों में लिखिए।
5. काव्यगत विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

♦♦♦♦♦

इकाई 4

पारम्परिक छंद

संरचना

4.1 छन्दों की उत्पत्ति
4.2 छन्दों का प्रारम्भ
4.3 छन्दों का विकास
4.4 छन्दों की उपादेयता
4.5 हिन्दी के कुछ प्रमुख छंद
4.6 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

4.1 छन्दों की उत्पत्ति

छन्दों की उत्पत्ति कब हुई? इस प्रश्न का 'भाषा की उत्पत्ति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानव ने भाषा कब सीखी? इस विषय पर विद्वानों ने अनेक कल्पनाएँ प्रस्तुत की हैं। इन्हें हम मुख्यतया दो विचारधाराओं में बाँट सकते हैं। पुराने लोगों के विचार में भाषा की उत्पत्ति का स्रोत 'दैवी' है और आधुनिक प्राणी-शास्त्र के तत्वज्ञ उसे 'ऐहिक' ही मानते हैं।

जो लोग भाषा की उत्पत्ति को दैवी स्रोत से मानते हैं, उनका विचार है कि सृष्टि के प्रारम्भ में जब परमेश्वर ने मनुष्य को बनाया, तब उसी ने भाषा भी मनुष्यों को सिखा दी और मानव जीवन के लिए उपयोगी 'ज्ञान' भी मनुष्य को 'शब्दब्रह्म' या शब्दमय रूप में ही दे दिया। संसार की विभिन्न जातियों में 'ईश्वरीय ज्ञान' मानी जाने वाली सभी पुस्तकें शब्दब्रह्म के भाषामय कलेवर में ही गुफित हुई हैं।

इसके व्यापारी आधुनिक जीव-वैज्ञानिक और भाषा तत्वज्ञ यह मानते हैं कि मानव की सृष्टि किसी खासतौर पर अलग रीति से नहीं हुई है, अपितु वह सृष्टि-क्रम की साधरण श्रृंखला में एक विकसित कड़ी मात्र है। अपने शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास में मानव पशु-जगत् से एक पग आगे मात्र है। इसी प्रकार भाषा में भी वह विकास-क्रम की एक अगली सीढ़ी मात्र को प्रकट करता है। भय, क्रोध, प्रेम, हर्ष आदि मनोवेगों के प्रदर्शन के लिए पशु जिन विशेष ध्वनियों का प्रयोग करते उन्हीं से मानव ने भी बोलना सीखा है और उन्हीं में शनै-शनै परिष्कार करते हुए क्रमशः अपनी भाषा को सम्पन्न और समृद्ध बनाया है।

उक्त दोनों ही विचारधराएँ 'भाषा की उत्पत्ति के प्रश्न पर मतभेद रखती हुई भी इस बात पर सहमत है कि मानवता और भाषा सहजात और समकालीन है। मानव के अवतरण के साथ ही भाषा का भी अवतार हआ है। मूक मानवता की कल्पना आज तक किसी ने नहीं की। एक प्रकार से भाषा ही मानवता को पशुता से अलग करती है। शारीरिक गठन में मानव और पशु समान है। मानव का मनोविकास भी तात्विक रूप में पशुओं से भिन्न नहीं है। पशुओं में भी मनोवेग पाये जाते हैं। सहज ज्ञान भी उनमें भरपूर है-शायद मानव से भी अधिक है, और कई विद्वानों के मत में मनन, चिन्तन और निर्धरण की शक्तियाँ भी पशुओं में पाई जाती है। केवल मनोभावों की अभिव्यक्तिभाषा में ही मानव ने पशुओं से विशेषता प्राप्त की है। पशु भी मनोभावों की अभिव्यक्ति करते हैं, परन्तु उनकी भाषा अस्पष्ट, अव्यक्त और परिच्छिन्न है। अभिव्यक्ति के विकास की विशेषता ही मानवता की विशेषता है।

पशु-पक्षियों की भाषा (जिससे मानव ने अपनी भाषा सीखी है), यद्यपि छन्दोमय तो नहीं होती, तथापि उसमें एक प्रकार से स्वर-सारस्य, लयसाम्य और नाद-माधुर्य आदि छन्द के कतिपय आधरतत्व बीजरूप से अवश्य पाये जाते हैं। प्रकृति के इस कलरवमय संगीत ने आदिमानव को अवश्य अपनी ओर बलवत् आकष्ट किया होगा। आज भी मानव इस पर मुग्ध है। वस्तुत यही कलरव छन्दों का जन्मदाता है और इसी से पीछे संगीत शास्त्र की भी नींव पड़ी है।

विद्वानों का यह भी अनुमान है कि आदिमानव की भी भाषा में स्वर-सारस्य, लयसाम्य और नादमाधर्य की प्रचुरता रही होगी और यह भी असम्भव नहीं कि कदाचित् मानव ने गद्य से पहले पद्यमयी बोली ही सीखी हो। इस अनुमान की पुष्टि में एक हेतु यह भी दिया जाता है कि आदिमानव ने पहले-पहल भाषा का प्रयोग केवल अपने अति उद्दीप्त और उत्कट मनोवेगों के प्रदर्शन के लिए ही किया होगा। गंभीर विचार और तत्व-चिन्तन बहुत पीछे की अवस्थाएँ हैं। तीव्र भावावेश की अवस्था में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा अवश्य ही छन्दोमयी रही होगी, या कम-से-कम उसमें बल, मात्रा साम और लय आदि के साम्य की प्रचुरता अवश्य ही अधिक होगी। आज भी तीव्र और उत्कट भावोद्रेक की

टिप्पणी

अवस्था में हमारी भाषा स्वत: ही लयात्मक प्रवाह में फूट पड़ती है। प्रेम, करुणा, भय, क्रोध आदि की उत्कटता में हम एक प्रकार से उन्माद की अवस्था में पहुँच जाते हैं और हमारी अभिव्यक्ति अपने आप छन्दोमयी हो जाती है।

दूसरे, आजकल हमें 'सुगम' और 'स्वाभाविक-सी' प्रतीत होने वाली गद्यभाषा वस्तुत पद्य से अधिक जटिल है। गद्य की रचना के नियम, श्उसके वाक्यों में शब्दों-कर्ता, कर्म, क्रिया, क्रिया विषेषण आदि की अवस्थिति के नियम तथा संकीर्ण और मिश्रित वाक्य-विन्यास के नियम इतने अधिक, इतने जटिल और इतने संकीर्ण हैं कि गद्य को छन्द के समान स्वत: प्रसृत (Spontaneous) नहीं माना जा सकता, ना ही उसका अस्तित्व साधरणतया विकास की प्रारम्भिक दशा में सम्भाव्य प्रतीत होता है। नि:सन्देह ये सब बातें गद्य की उत्तरवर्ती अवस्था की द्योतक हैं। इस आधर पर यह कल्पना सर्वथा निर्मूल नहीं कि छन्दोमयी भाषा गद्य से अधिक प्राचीन है और गद्य का प्रादुर्भाव सम्भवत छन्दों से बहुत पीछे हुआ है।

कुछ भी हो, यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट है कि छन्दों की उत्पत्ति इतनी ही पुरानी है जितना कि मानव और उसकी भाषा।

4.2 छन्दों का प्रारम्भ

ऐतिहासिक दृष्टि से भी छन्द गद्य से अधिक प्राचीन है। मानव-साहित्य की प्राचीनतम रचना, ऋग्वेद, हमें छन्दों में ही मिलती है। सम्भव है उस समय साधरण व्यवहार में गद्य का प्रयोग भी होता हो, परन्तु इससे इतना तो स्पष्ट है कि कला की अभिव्यंजना के लिए उस प्राग-ऐतिहासिक काल में छन्दों का ही प्रयोग होता था। विद्वानों का अनुमान है कि छन्दों का प्रयोग सम्भवत: ऋग्वेद से भी पुराना है, कारण कि ऋग्वेद के छन्द छान्दस रचना की पर्याप्त विकसितावस्था के द्योतक हैं। अवश्य ही उस अवस्था तक पहुँचने से पहले छन्द-निर्माण के अनेक प्रयोग हुए होंगे जो क्रमश: विकसित होकर ऋग्वैदिक छन्दों की पूर्णता तक पहुँच पाये। इस विकास-श्रृंखला में निश्चय ही सैकड़ों वर्ष लगे होंगे। परन्तु ऋग्वेद से पूर्व के छन्दों के अध्ययन के लिए हमारे पास कोई मूर्त सामग्री विद्यमान नहीं है, इसलिए साधरणतया हमें ऋग्वेद को ही छन्दों के प्रयोग का आदिम प्रतिनिधि मानना पड़ता है।

ऋग्वेद से लेकर अब तक छन्दों का प्रयोग निरन्तर हो रहा है। केवल शुद्ध साहित्य या कविता के लिये ही नहीं, अपितु व्याकरण, कोश, धर्मशास्त्र, इतिहास, राजनीति, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि पारिभाषिक विषयों के लिए भी छन्द का ही माध्यम अपनाया गया है। संस्कृत का प्राय सम्पूर्ण साहित्य और पाली प्राकृत अपभ्रंश का अधिकांश साहित्य तथा मध्ययुगीन हिन्दी का प्राय समग्र साहित्य छन्दों में ही रचना गया है।

4.3 छन्दों का विकास

अपने मूल रूप में छन्द, वस्तुत, 'किन्हीं छोटी-बड़ी ध्वनियों के व्यवस्थित सामंजस्यश' का ही नाम है। प्राकृतावस्था में यह सामंजस्य अवश्य ही स्वयजात या स्वत: प्रसृति (Spontaneous) होगा। इसकी स्वरमाधुरी और लय पर आदिमानव अवश्य ही मुग्ध हुआ होगा। पीछे स्वत: प्रसृति के अभाव में भी मानव ने इसका अनुकरण करने में अनेक सकाम चेष्टाएँ की होगी और वह एक सीमा तक उनमें सफल भी हुआ होगा। निश्चय ही इन सकाम चेष्टाओं और कृतक प्रयत्नों की श्रृंखला में मानव ने इस ध्वनि-सामंजस्य की प्राप्ति के लिए किन्हीं खास नियमों की व्यवस्था का भी कुछ निर्धरण किया ही होगा।

टिप्पणी

अनुमान है कि इस दिशा में सबसे पहला नियम यह ठहराया गया होगा कि सामंजस्य की प्राप्ति के लिए छन्द के भिन्न-भिन्न ध्वनिसमूह-खंडों में ध्वनियों का तोलमाप या वजन बराबर होना चाहिये। इसे हम ध्वनि-संतुलन का नियम कह सकते हैं। अब ध्वनियों के तोल या वजन को मापने का उस समय एक ही तरीका हो सकता था कि स्थूल रूप से प्रत्येक खंड की ध्वनियाँ गिनती में बराबर हों। फलतः प्रारम्भिक छन्द जिनका प्रतिरूप हमें ऋग्वेद के छन्दों में मिलता है, वस्तुतः ध्वनियों या अक्षरों की गिनती के आधर पर ही रचे गये हैं। इनमें ध्वनि-सन्तुलन का आधर केवल अक्षर-संख्या है। अक्षर चाहे ह्रस्व हो या दीर्घ, ह्रस्वों की संख्या अधिक हो या दीर्घो की, कहाँ ह्रस्व हो, कहाँ दीर्घ-इन बातों का विचार वैदिक छन्दों में नहीं किया गया। इनकी पाद-व्यवस्था भी ढीली है। ऋग्वेद में साधरणतया तीन और चार पाद वाले छन्द हैं, परन्तु कहीं-कहीं एक, दो और पाँच पाद वाले छन्द भी मिलते हैं। अनुक्रमणीकारों के अनुसार ऋग्वेद में सात प्रधन छन्दों का प्रयोग हुआ है। उनके नाम ये हैं-गायत्री, उष्णिक, अनुष्टप् बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुभ् और जगती। इनमें गायत्री और उष्णिक के तीन, पंक्ति के पाँच और शेष के चार पाद होते हैं। गायत्री के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर हैं, और इसमें कुल मिलाकर 8×3 = 24 अक्षर होते हैं। उष्णिक के तीनों पादों को मिलाकर कुल 28 अक्षर होते हैं-दो पाद आठ-आठ अक्षर के और एक पाद 12 अक्षर का। इस आधर पर इसके तीन भेद हो जाते हैं-(1) उष्णिक (8 8 12), (2) पुर उष्णिक (1288) और (3) ककुप्, (8 12 8)। अनुष्टुप् भी आठ अक्षर का छन्द है, परन्तु इसके पाद चार होते हैं (कुल 8×4 = 32)। बृहती चार पाद का 36 अक्षरों का छन्द है जिसके तीन पादों में 8-8 और एक में 12 अक्षर होते हैं। यद्यपि इस आधर पर इसके चार भेद हो सकते हैं, तथापि ऋग्वेद में केवल दो का ही प्रयोग मिलता है-8812 8 और 12888। इस द्वितीय भेद को सतोबृहती कहते हैं। पंक्ति आठ-आठ अक्षर के पाँच पदों का छन्द है (8×5 = 40)। इसका एक विषम भेद (12 12 8 8) प्रस्तार पंक्ति के नाम से प्रयुक्त हुआ है। त्रिष्टुभ् 11 अक्षर के चार पादों का छन्द है (11×4 = 44)। कहीं-कहीं इसके पाँच पाद भी मिलते हैं। जगती के प्रत्येक पाद में 12 अक्षर होते हैं और यह चारपादी छन्द है (12×4 = 48)। इनके अतिरिक्त ऋग्वेद के सप्तम मंडल में एक और छन्द प्रयोग हुआ है जिसे विराज् कहा गया है। इसके दो ही पाद होते हैं और प्रत्येक पाद में 10-10 अक्षर हैं।

इन सब छन्दों में स्थूल रूप से पाद का आधर अक्षरों की गिनती ही है। परन्तु यह स्थूल नियम भी कहीं-कहीं पूरा नहीं बैठता। इसमें भी कहीं-कहीं अनेक अपवाद दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ प्रसिद्ध गायत्री मंत्र के प्रथम पाद (तत्सवितुर्वरेण्यम) में आठ के स्थान पर केवल सात ही अक्षर हैं। इसी प्रकार कहीं-कहीं आठ के स्थान पर नौ अक्षर भी मिलते हैं और यह न्यूनाधिक्य प्रत्येक छन्द के सम्बन्ध में पाया जाता है। पीछे के अनुक्रमणीकारों ने इन्हें नित (एकाक्षरहीन) और विराड् (दो अक्षरहीन) का नाम दिया है। इसी प्रकार एकाक्षर अधिक को भूरिक और दो अक्षर अधिक को स्वराड् कहते हैं। अनुक्रमणीकारों ने न्यूनाक्षर छन्दों को 'विच्छन्द' और अधिकाक्षर छन्दों को 'अतिच्छन्द' का नाम दिया है। इस न्यूनाधिक्य का समाधन इस प्रकार से किया जाता है-छन्द तो लय के अनुसार चलता है और सहिता पाठ में प्रयुक्त शब्द व्याकरण की दृष्टि से शुद्धरूप में दिये गये हैं। इसके अनुसार उक्त गायत्री मंत्र के 'वरेण्यम' (जो व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध रूप है) को 'वरेणियम' (जो छन्द की दृष्टि से शुद्ध है) करके पढ़ने का विधन है। इसी प्रकार 7192 में 'इन्द्र' शब्द को 'इन्दर' करके पढ़ने की व्यवस्था की गई है। यह बात पचासों मंत्रों में है। कहीं 'ज्येष्ठ' को 'ज्ययिष्ठ' और 'सख्याय' को 'सखिआय' और कहीं 'स्याम' को 'सिआम' और 'व्युषा' को 'विउषा' करके पढ़ने का विधन है।

इस प्रकार वैदिक छन्द किन्हीं कड़े नियमों में बँधे हुए नहीं हैं। इनका प्रत्येक नियम प्रायः सापवाद है। शायद इसीलिए पीछे के वैयाकरणों ने स्थान-स्थान पर 'छान्दस प्रयोग' का अर्थ ही 'नियम-शैथिल्य'

टिप्पणी

किया है। जहाँ कहीं नियम में शिथिलता मिली, उसे 'छान्दस' कहकर निपटा दिया है। 'छन्दसि सर्वे विधयो विकल्पन्ते' उनकी आम परिभाषा है। परन्तु ऐसा समझना भूल है। प्रत्येक विज्ञान के आविष्करण ाकाल में इस प्रकार की नियम-निर्मुक्ति स्वाभाविक और अपेक्षित भी है। लक्षण और नियम तो वस्तुत लक्ष्य को देखकर बहुत पीछे बनते हैं। ये नियमशैथिल्य वस्तुत छन्दों के निर्माण में नये-नये प्रयोगों की दिशा में की जाने वाली सतत् चेष्टाओं के स्वाभाविक परिणाम हैं। इन्हीं तथाकथित अपवादों की तह में पीछे के अनेक छन्दों के बीज विद्यमान हैं। पीछे के आचार्यों ने यही से प्रतीक लेकर अनेक नये छन्द गढ़े हैं और वेद के गायत्री आदि छन्द क्रमशः विकसित होकर पीछे संस्कृत में 'केवल छन्द' न रह कर 'छन्दोजातिया' बन गये हैं जिनसे प्रस्तार की रीति से सैंकड़ों नूतन छन्दों की सृष्टि हुई है। इसी नियमशैथिल्य में वस्तुतः साधरण विकास के मूल तत्व सन्निहित हैं। नियमों का उल्लंघन निःसन्देह प्रगति का प्रधन लक्षण है और नियमों का अक्षरश पालन कट्टरता को उत्पन्न करके प्रगति का विघातक सिद्ध होता है।

विकास की दृष्टि से वेद के मूल छन्द वस्तुतः तीन ही हैं-गायत्री, त्रिष्टुभ् और जगती। गायत्री के अष्टाक्षरी तीन पादों में एक पाद की वृद्धि करके जब उसे भी अन्य छन्दों की समानता पर लाया गया, तब वहीं अनुष्टुप् नाम से अलग छन्द गिना गया। वस्तुतः वह गायत्री का ही परिवर्धित रूप है। संहिताओं में गायत्री की प्रधनता है और ब्राह्मण ग्रन्थों की गाथाओं में अनुष्टुप् की प्रचुरता मिलती है। ब्राह्मण ग्रन्थों का अनुष्टुप् वैदिक स्वरों से नियंत्रित न होकर तालसंगीत के अनुशासन में बद्ध है। गाया जाने के कारण इसे गाथा कहते हैं। यही गाथा छन्द पीछे कालमात्रा से नियंत्रित होकर संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में 'आर्या' कहलाया है। हिन्दी में पहुँचकर यही दोहा बन गया है। इसी का विपरीत रूप सोरठा है। यही वैदिक अनुष्टुप् 'वर्णक्रम' से नियन्त्रित होकर संस्कृत में श्लोक या अनुष्टुप् नाम से प्रचलित है। विचित्र बात यह है कि वर्णवृत्त बनकर भी यह 'गणों' के बन्धन से निर्मुक्त है। वैदिक अक्षर संख्या (8×4) ही इसका प्रधन लक्षण है। हाँ, तोलपूर्ति के लिए पाँचवा वर्ण लघु और छठा वर्ण गुरु रखने का ही इनमें विधन है। प्रयोग की दृष्टि से यही सबसे अधिक प्रयुक्त हुआ है। रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृतियों आदि में इसी की प्रचुरता है। वैयाकरणों, दार्शनिकों और आलंकारिकी ने इसी का मात्रिक रूप, आर्या, कारिका नाम से प्रयुक्त किया है।

इसी प्रकार वैदिक त्रिष्टुभ् (11×4) भी ब्राह्मण ग्रन्थों में 'ताल' से नियंत्रित होकर संस्कृत में वर्णवृत्त के रूप में पहुंचा है। वर्णवृत्त बनकर भी इसने वैदिक स्वच्छन्दता को नहीं छोड़ा। पीछे का बेचारा लक्षण-आचार्य इसे किसी भी कड़े नियम में नहीं बांध सका। संस्कृत में इसके दो रूप मिलते हैं-एक में पाद का पहला अक्षर लघु और दूसरे में गुरु। इन्हें क्रमशः उपेन्द्रवज्रा और इन्द्रवज्रा का नाम दिया गया है। परन्तु महाकवियों ने लक्षण-आचार्य के इस भेद को भी नहीं माना। वे यथारुचि इसका प्रयोग करते आये हैं-प्रथम पाद में यदि पहला अक्षर लघु है तो द्वितीय में उन्होंने गुरु रख दिया है, मानो वे तो इसे एक ही छन्द मानते हैं। हारकर लक्षण-आचार्य ने इस मिश्रण को उपजाति का नाम दे दिया है। यह नाम पीछे हर प्रकार के 'छन्दसकर' के लिए प्रयुक्त हुआ है।

वैदिक जगतो के भी इसी प्रकार से दो छन्द बने हैं-वशस्थ और इन्द्रवशा। इनमें भी पाद के पहले अक्षर केलघ (वशस्थ) और गुरु (इन्द्रवशा) होने का ही नियम है। पीछे लक्षण-आचार्य ने इसे भी उपजाति कहकर जान छड़ाई है। अनुष्टुप् के समान त्रिष्टुभ् और जगती छन्द भी प्राकृत और अपभ्रंश में पहँचकर अपने मात्रिक कप में वैतालिक बन गये हैं। शायद राजदरबारों के वैतालिक (भाट) इनका अधिक प्रयोग करते थे जिससे का नाम वैतालिक पड़ गया। इन्हें ही कई आचार्यों ने 'मागधिका' कहा है।

टिप्पणी

वैदिक छन्द-उष्णिक, बृहती, सतोबृहती, विराज, प्रस्तार-शक्ति और शक्वरी आदि विषम आर छन्दों के प्रतिनिधि हैं। जहाँ दो पादों में एकसमान लक्षण मिला, वहाँ अर्धसम और जहाँ चारों पदों में श्रण हआ वहाँ विषम छन्द होते हैं। पिगल ने अर्धसम छन्द केवल दस बताए हैं। हेमचन्द्र ने इनका संख्या में पुष्कल वृद्धि की है।

पीछे के लक्षण-आचार्यों की प्रवृत्ति कुछ यह रही है कि प्रत्येक छन्द को समान नियमों में जकड़ दिया बायो वैदिक गायत्री के आठ-आठ अक्षरों के तीन पाद थे। और छन्दों के साथ समानता लाने के लिए जहाँ एक मोदसमें एक और पाद की वृद्धि करके इसे पूरे चार पाद वाला छन्द अनुष्टप् बना दिया (यह प्रक्रिया वैदिक काल में ही हो चुकी थी) वहाँ दूसरी ओर संस्कृत में इसके 24 अक्षरों के पूरे चार पाद बना कर इसे छः अक्षरों के पाद वाला छन्द (पीछे छन्दोजाति) मान लिया गया। इसी प्रकार तीन पादी 28 अक्षर वाले उष्णिक् छन्द के भी सात-सात अक्षर के पूरे चार पाद बना दिये गये। पीछे यह उष्णिक जाति बन गई।

पिगल ने अपने छन्द इसी 6०4 (वैदिक गायत्री का रूपान्तर) तनुमध्या छन्द से प्रारम्भ किये हैं। पिगल का सबसे बड़ा छन्द-अपवाह, 26 अक्षर का है। जयदेव (800 ई०) भी छः अक्षरपादी छन्दों से प्रारम्भ करता है। जयकीर्ति (1000 ई०) केदार (1100 ई०) और हेमचन्द्र (1150 ई०) ने एकाक्षरा जाति से प्रारम्भ किया है। इससे स्पष्ट है कि छः अक्षर से कम पाद वाले छन्दों की सृष्टि बहुत पीछे हुई है। पिगल ने दंडको का विशेष निरूपण नहीं किया। ये भी पीछे ही विकसित हुए हैं। भवभूति के दो-एक प्रयोगों को छोड़कर संस्कृत साहित्य में दंडको का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है। हाँ, हिन्दी में ये प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। ती

यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि वैदिक छन्दों में ध्वनि-संतुलन की व्यवस्था केवल अक्षरों की संख्या के आधर पर थी। इसमें मात्रा (ुनंदजपजल) और लघु-गुरु अक्षरों की स्थिति के क्रम की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। परन्तु यह स्पष्ट है कि केवल अक्षरों के संख्या-साम्य मात्र से अपेक्षित लय पैदा नहीं होती और लय की उत्पत्ति के बिना 'ध्वनि सामंजस्य' या छन्द नहीं बनता। लय प्राप्ति के लिए वेद में तो उदात्त आदि स्वरों से काम निकाल लिया जाता था। स्वर ह्रस्व है या दीर्घ इससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। कारण कि उदात्त हो जाने से ह्रस्व ही दीर्घ का काम दे जाता था और दीर्घ भी अनुदात्त होने से लय में बाध नहीं कर सकता था। ब्राह्मण ग्रन्थों में जो कतिपय छन्द प्रयुक्त हुए हैं, उनमें भी ध्वनि-संतुलन का आधर अक्षर संख्या है। और लय की उत्पत्ति वहाँ 'ताल संगीत' के द्वारा पूरी की जाती थी। संस्कृत के छन्दों में ध्वनि-संतुलन की व्यवस्था का प्रधन आधर तो अक्षर संख्या ही रही, परन्तु लय की उत्पत्ति के लिए लघु और गुरु अक्षरों की स्थिति का क्रम नियत कर दिया गया। इस लघु-गुरु वर्गों के क्रम के स्थिरीकरण के लिए पिंगल ने तीन-तीन अक्षरों के त्रिक या गण बनाने की योजना प्रस्तुत की। ये गण-तीन अक्षरों की इकाई-वस्तुतः सर्वग्राह्य हुए, कारण कि ये क्रम की तीनों स्थितियों-आदि, मध्य और अवसान-को स्पष्टता से प्रकट कर देते हैं। तब से अब तक (एकाध अपवाद को छोड़कर) संस्कृत और हिन्दी छन्दों का लक्षण केवल वर्ण संख्या के आधर पर नहीं अपितु इन्हीं गणों के द्वारा बताया जाता है। संस्कृत काल में छन्दों की संख्या में भी यथेष्ट वृद्धि हुई। प्रयोग की दृष्टि से तो सम्पूर्ण साहित्य में कुल 100 के लगभग छन्द मिलते हैं। इनमें भी बार-बार दोहराये जाने वाले छन्द केवल 25 के लगभग हैं। परन्त लक्षण-आचार्यों ने एक पाद में अक्षरों की संख्या के आधर पर उनके लघु-गुरु क्रम के वैविध्य से अनेक नये छन्दों के नाम गिनाये हैं। इन लोगों ने प्रत्येक सम्भव या सम्भाव्य क्रम के आधर पर प्रस्तार की रीति से छन्दों की संख्या लाखों तक पहुँचा दी है। यह वस्तुतः कोरी कल्पना और थ्योरी में ही है, प्रयोग में इन छन्दों का कहीं अस्तित्व नहीं मिलता।

टिप्पणी

इसके साथ ही वेद के किन्हीं अनियमित छन्दों-'विच्छन्दों' और 'अतिछन्दों' (उष्णि, सतोवृहती आदि) के आधर पर संस्कृत में अर्धसम और विषम छन्दों के अनेक भेद किये गये। इनका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

संख्या वृद्धि के साथ संस्कृत में छन्दों की लम्बाई में भी क्रमशः वृद्धि होती गई। वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में बड़े-से-बड़ा पाद 12-13 अक्षर का है, पिंगल ने 26-27 अक्षर तक के पाद वाले छन्दों का वर्णन किया है। जयकीर्ति, केदार भट्ट और हेमचन्द्र ने इससे भी अधिक अक्षरों वाले छन्दों (दण्डको) का निरूपण किया है।

इधर संस्कृत के साथ-साथ देश में प्राकृत साहित्य भी पनप रहा था। प्राकृत छन्द अपनी स्वतंत्र पद्धति पर विकसित हो रहे थे। संस्कृत के समान इन्हें लघु-गुरु के स्थिति क्रम (या गण योजना) के नियमों में नहीं बाँध गया। ये वेद कालीन सरलता और प्रचुर स्वतन्त्रता से चल रहे थे। प्राकृत छन्दों की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इनमें पाद व्यवस्था का आधर अक्षर संख्या नहीं, अपितु मात्रा संख्या थी। इनमें ध्वनि की लघुतम इकाई वर्ण या अक्षर न होकर 'मात्रा' मानी गई। निःसन्देह ध्वनि-विश्लेषण की दिशा में यह बात विकसित प्रगति की द्योतक है। इस मात्रा का आधर ध्वनि की ह्रस्वता या दीर्घता नहीं, अपितु वह 'समय' है, जो किसी ध्वनि के उच्चारण में लगता है, इसीलिए इन्हें 'काल मात्रा' कहते हैं।

प्राकृत के अधिकांश छन्द मात्राओं की गिनती पर ही अवलंबित हैं। कहीं-कहीं लय की प्राप्ति के लिए पादान्त या अन्य वर्गों में लघु-गुरु की स्थिति का स्थिरीकरण कर दिया गया है। ये मात्रा प्रधन छन्द वस्तुतः प्राकृतों की ही देन है। संस्कृत में इनका प्रवेश प्राकृत प्रभाव के कारण से है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, संस्कृत में मात्रा छन्द बहुत ही कम प्रयुक्त हुए हैं। अपभ्रंश में भी मात्रा छन्दों का ही अधिक प्रयोग उपलब्ध होता है।

हिन्दी में अधिकांश छन्द प्राकृतों से आए हैं। इसी से ये मात्रा-प्रधन छन्द है। इनमें पाद व्यवस्था मात्राओं की संख्या के आधर पर है और प्राकृत के समान ही कहीं-कहीं लय प्राप्ति के लिए पादान्त वर्गों में लघु-गुरु का नियतीकरण कर दिया गया है। (जैसे चौपाई के अन्त में गुरु-लघु ऽ। रखने का निषेध है। यह ठीक है कि संस्कृत के वर्ण प्रधन छन्द भी हिन्दी में आए हैं, परन्तु इनका प्रयोग किन्हीं लम्बे छन्दों-सवैया, कवित्त आदि में ही हुआ है। छोटे छन्दों का प्रयोग केशव आदि कई पुराने कवियों ने किया है सही, परन्तु उनका नाम और लक्षण संस्कृत से ही माँगा हुआ है। आज भी मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी और उनके सुपुत्र श्री आनन्द कुमार ('अंगराज' कर्ता) आदि लब्ध प्रतिष्ठ महाकवियों ने वार्णिक छन्दों का प्रयोग किया है, परन्तु यह भी संस्कृत के अनुकरण पर ही हुआ है। हाँ, कहीं-कहीं हिन्दी के कलाकारों ने कुछ स्वतन्त्रता लेकर किन्हीं भुजग-प्रयात आदि वर्णवृत्तों के चार से अधिक पाद भी रख दिए हैं। यह स्तुत्य प्रगति अभी अधिक प्रचलित नहीं हुई।

हिन्दी के वर्तमान नए छन्दों पर अंग्रेजी का प्रभाव भी पड़ रहा है। अंग्रेजी के छन्द अधिकांश 'बल प्रधनश या स्वर प्रधन हैं। परन्तु अंग्रेजी का स्वर संचार वैदिक स्वरों की भान्ति गीत्यात्मक न होकर बल प्रधन (च्पजबी ंबबमदज) है। हिन्दी के अनेक नए लेखक अब ऐसे ही छन्दों का प्रयोग करने लगे हैं जिनमें ध्वनि संतुलन स्वर लहरी के आधर पर होता है। इनमें न अक्षरों की गिनती अपेक्षित है, न लघु-गुरु वर्णों का क्रम और ना ही मात्राओं की संख्या से कुछ प्रयोजन है। ये एक प्रकार से लयात्मक रचना के निदर्शन है। कई लोग इन्हें 'स्वच्छन्द छन्द' कहते हैं और कई तो इन्हें छन्द-परिधि में शामिल करने को ही तैयार नहीं। हमारे अपने विचार में अभी इनकी स्थिति द्रवावस्था में है और

यह नई छन्द-पद्धति अभी प्रयोगावस्था में ही चल रही है। प्रयोग बाहुल्य के द्वारा परिपक्वास्था के आ जाने पर ही इन नए छन्दों का वैज्ञानिक रीति पर अध्ययन सम्भव हो सकेगा।

इस प्रकार छन्दों के विकास की परम्परा प्रकृति के दिव्य संगीत से प्रारम्भ होकर आज की दशा तक पहुँच पाई है। कौन कह सकता है कि यह परिपूर्ण हो गई है। निश्चय ही भविष्य में यह अनेक अभिनव रूप धरण करेगी।

कहना न होगा कि भारतीय छन्दों विज्ञान ग्रीस, अरब, फारस और यूरोप के छन्दों विज्ञान से कहीं अधिक प्रफुल्लित, अधिक व्यापक और अधिक सूक्ष्म है। इसमें ध्वनि का विश्लेषण इतना वैज्ञानिक है कि मात्रा और अर्ध मात्रा तक का इसमें निरीक्षण विद्यमान है। इस सम्बन्ध में श्री आर्नल्ड महोदय ने ठीक ही कहा है

"ऋग्वेद के छन्द वर्तमान यूरोप के छन्दों से उद्देश्य के वैविध्य और रचना के औदार्य में बहुत उन्नत हैं। इनका उनसे वस्तुत: वही सम्बन्ध है जो साधरण देहाती गीतों का समृद्ध और अति सुन्दर पक्के रागों से होता हैं।

छन्द-साहित्य की रूप-रेखा

शास्त्राकार सदा कलाकार के पीछे आते हैं। कला का निर्माण वस्तुत: कलाकार का काम है, और कलाकार की कला का सागोपाग विवेचन और वैज्ञानिक अध्ययन शास्त्राकार का ध्येय होता है। फिर जो कला जितनी अधिक उपयोगी होती है, उसका शास्त्रीय अध्ययन भी उतना ही पहले प्रारम्भ हो जाता है।

वेद की संहिताओं में छन्दों के शास्त्रीय अध्ययन का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। गायत्री और शक्वरी आदि एक दो छन्दों का नाम अवश्य मिलता है। इन छन्दों के नाम से अनुमान है कि इनका कोई विशेष लक्षण भी अवश्य ही स्थिर किया गया होगा, कारण यह है कि लक्षण के आधर पर ही नाम रखा जाता है। लक्षण के बिना नाम का कोई अर्थ ही नहीं। इससे प्रतीत होता है कि संहिता काल में ही छन्दों के लक्षण और नामकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी। ब्राह्मण ग्रन्थों में लक्षण शास्त्र के सम्बन्ध में स्पष्ट संकेत मिलते हैं। इनमें अनेक छन्दों की निरुक्ति और लक्षणों के सम्बन्ध में पर्याप्त ऊहापोह है। ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद के साहित्य में छन्दों के विवेचन के लिए नियमपूर्वक अलग स्वतन्त्र अध्याय लिखे गए हैं। शाखायन श्रौत सूत्र, निदान सूत्र और ऋक्-प्रातिशाख्य में इस प्रकार के स्वतन्त्र अध्याय हैं। इस काल के लगभग छन्द भी व्याकरण आदि के समान अलग 'स्वतन्त्र शास्त्र' की पदवी ग्रहण कर चुका था और वेद के छ: अंगों में इसकी गणना भी होने लग गई थी।

छन्दों का विधिपूर्वक निरूपण हमें सबसे पहले पिंगल के प्रसिद्ध वेदाङ्ग 'छन्द सूत्र' या छन्द शास्त्र में मिलता है। जैसे व्याकरण में पाणिनि को प्रथम आचार्य माना जाता है, वैसे ही छन्द में आदि आचार्य की पदवी पिंगल को दी जाती है। पिंगल ने भी पाणिनि के समान ही वैदिक छन्दों का उल्लेख साधरण विधि से ही किया है, उसमें अधिक विस्तृत विवेचन संस्कृत के छन्दों का ही हुआ है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, पिंगल ने छ; अक्षरपादी छन्द 'तनुमव्या' से प्रारम्भ करके 26 अक्षरपादी तक के छन्दों का वर्णन किया है। एकाध को छोड़कर दण्डको का विशेष उल्लेख पिंगल में नहीं मिलता। पाणिनि के प्रत्याहारों के समान पिंगल ने लक्षणों की सुगमता के लिए लघु-गुरु अक्षरों की गिनती और क्रम को बताने के लिए दस चिह्न अक्षरों का प्रयोग किया है। इनमें 'ल' का अर्थ है 'लघु' और 'ग' का अर्थ है गुरु। शेष आठ अक्षरों को गण कहते हैं। प्रत्येक गण एक त्रिक प्रकट करता है, जिसमें लघु-गुरु वर्गों के आदि, मध्य अवसान-सम्बन्धी क्रम की तीनों स्थितियों का बोध सुगमता से हो जाता है। उदाहरण के रूप में 'म' का अर्थ है तीनों गुरु वर्ण (जैसे-जाते हैं) और 'न' का अर्थ है तीनों

टिप्पणी

लघुवर्ण (यथा-पवन)। 'भ' का अर्थ है आदि गरु और मध्य तथा अन्त में लघु (यथा-आगम)। (इनका विशेष विवरण आगे देखिए।) पिंगल की यह प्रक्रिया एकाध अपवाद को छोड़कर प्राय: सभी ग्रन्थकारों ने स्वीकार की है और आज तक बराबर व्यवहृत होती आ रही है। पिंगल के नाम पर एक और ग्रन्थ 'प्राकृत पिंगल' नाम से प्रचलित है। परन्तु यह स्पष्टत: पिंगल का नहीं है। यह बहुत पीछे की रचना है। विद्वानों ने इसे 14वीं सदी की रचना माना है। गंगादास की 'छन्दोमंजरी' भी इस विषय का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इनके अतिरिक्त भट्ट हलायुध की आचार्य पिंगल के 'छन्द शास्त्र' पर लिखी हुई विस्तृत एवं प्रामाणिक टीका वस्तुत: स्वतंत्र ग्रन्थ का दरजा रखती है। पूना की भंडारकर संस्था ने अपनी पत्रिका में एक और अज्ञात लेखक का 'कवि दर्पण' प्रकाशित किया था जिसमें आचार्य हेमचन्द्र को उद्धृत किया गया है। इनके साथ ही वृत्तदीपिका', 'छन्द सार' आदि अन्य ग्रन्थों का भी उल्लेख मिलता है।

हिन्दी में भी अनेक छन्दोग्रन्थ लिखे गए हैं। ये प्राय: प्राकृत पिंगल, 'वृत्त रत्नाकर' और हेमचन्द्र के 'छन्दो अनुशासन' से ही अपनी सामग्री लेते हैं। किसी विशेष मौलिकता के दर्शन इनमें नहीं होते।

हिन्दी में महाकवि केशव के एक छन्दोग्रन्थ लिखने का उल्लेख मिलता है। परन्तु वह अभी प्रकाश में नहीं आया। चिन्तामणि त्रिपाठी का 'छन्दविचार', मतिराम का 'छन्दसार', भिखारीदास का 'छन्दो अर्णव', पद्माकर की 'छन्दोमंजरी', गदाधर की 'वृत्तचंद्रिका' और सुखदेव मिश्र का 'वृत्तविचार' आदि हिन्दी में विशेष प्रसिद्ध छन्दोग्रन्थ हैं।

इन पुराने ग्रन्थों के आधर पर आधुनिक काल में भी कतिपय छन्दोग्रन्थ लिखे गए हैं। उनमें से विशेष उल्लेखनीय ये हैं

श्री ज्वालास्वरूप का 'रुद्रपिंगल', श्री बलवान् सिंह की 'चित्रचंद्रिका' और श्रीधर का 'पिंगल'-ये तीन ग्रन्थ सन् 1869 में प्रकाशित हुए। सन् 1875 में कन्हैयालाल शर्मा ने 'छन्दप्रदीप' लिखा। षिकेश भट्टाचार्य का 'छन्दोबोध' (1877), उमरावसिंह का 'छन्दोमहोदधि' (1878), रामप्रसाद का 'छन्दप्रकाश' (1891) इस विषय की अन्य रचनाएँ हैं। ये सब प्राय: साधरण कोटि के ग्रन्थ हैं। छन्दों का विधिपूर्वक विस्तृत निरूपण हमें श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' के 'छन्द प्रभाकर' (1994) में मिलता है। इसके बाद रामकिशोर का 'छन्दभास्कर' (1895), गदाधर की 'छन्दोमंजरी' (1903 द्वितीयावृत्ति) और गिरिवरस्वरूप का 'गिरीश पिंगल' (1905) प्रकाश में आए। हरदेवदास का 'पिंगल' (1906) भी इस विषय की उल्लेखनीय रचना है। इनके अतिरिक्त श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने 'घनाक्षरी नियम रत्नाकर' (1897) नाम से केवल घनाक्षरी छन्दों का विवेचन किया है जो अपने आप में पूर्ण और प्रामाणिक होने पर भी लक्षण ग्रन्थ के रूप में वस्तुत: अपूर्ण है। इसके बाद केवल राम शर्मा का 'छन्दसार-पिंगल' (1916) और नारायण प्रसाद का 'पिंगलसार' (1922) प्रकाशित हुए। साथ ही विजावर (बुन्देलखंड)-नरेश के राज-कवि श्री बिहारीलाल ब्रह्मभट्ट ने अपने 'साहित्य सागर' (1935) के प्रथम भाग में छन्द के विषय पर भी तीन तरंग (2, 3, 4) लिखे हैं, जिनमें मौलिकता का अभाव और प्रथा-पालन की मनोवृत्ति की ही प्रधनता दिखती है। सन् 1933 में श्री रघुवरदयाल का 'पिंगल प्रकाश' नाम से एक और ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, जो विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें छन्दों के निरूपण में कुछ-कुछ नवीन शैली के दर्शन होते हैं। श्री रामनरेश त्रिपाठी की 'पद्य रचनाश भी इस विषय की अच्छी पुस्तक है।

इन सबमें से जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' का 'छन्द प्रभाकर' ही वस्तुत: उपादेय और विस्तृत छन्दोग्रन्थ हैं, जो अपनी अनेक विशेषताओं के कारण पिछले 60 वर्ष से खूब सर्वप्रिय हो रहा है। वस्तुत: यह समाहार ग्रन्थ है और प्राचीन ग्रन्थों के आधर पर लिखा गया है। हिन्दी में प्रयुक्त प्राय: सभी छन्दों का इसमें समावेश है।

वर्तमान में और किसी विशेष उल्लेखनीय छन्दोग्रन्थ की रचना नहीं हुई। हाँ, कतिपय पाठ्य पुस्तकों के रूप में लघु पुस्तिकाएं अवश्य लिखी गई हैं, जो वस्तुतः उक्त 'छन्द प्रभाकर' की ही ऋणी हैं।

कहना न होगा कि हिन्दी के प्रायः सभी ग्रन्थ 'निरूपण ग्रन्थ' हैं, जो प्रायः संस्कृत की पुरानी शैली के करण पर ही लिखे गए हैं। इनके निरूपण में न कोई मौलिकता है और न प्रतिपादन में कोई नवीनता। छन्दशास्त्र के पारिभाषिक काठिन्य को दूर करने की भी किसी चेष्टा के इनमें दर्शन नहीं होते। ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से छन्दों का आलोचनात्मक विवेचन और वैज्ञानिक पद्धति पर इनका अध्ययन अभी हिन्दी में नहीं हो पाया है।

4.4 छन्दों की उपादेयता

छन्द प्रकृति की वाणी है और शायद आदिमानव की आदि अभिव्यक्ति का आदिम माध्यम है। छन्द का अद्‌भुत आकर्षण सबके अनुभव की वस्तु है। मानव ही क्या, पशु-पक्षी और साँप तक भी इसकी लय पर मुग्ध हो जाते हैं। छन्द ही संगीत की योनि है और छन्द ही काव्य की जान है। छन्द के कलेवर में गुम्फित भाव सहस्रों श्रोताओं को मंत्रमुग्ध-सा बना देते हैं। छन्द का यह हृदयग्राही प्रभाव आज से नहीं, अति प्राचीन काल से बराबर चला आ रहा है।

छन्द का प्रभाव हृदय तक ही सीमित हो, यह बात नहीं। मानव के मस्तिष्क के विकास की पूर्णता में भी छन्दों का उपयोग विज्ञान-सम्मत है। बचपन में जो बच्चे अधिक छन्द कण्ठस्थ करने का अभ्यास कर लेते हैं, उनकी बुद्धि अधिक तीखी और पैनी हो जाती है। छन्द अनायास ही-खेल-कूद में ही याद हो जाते हैं और चिरकाल तक याद रहते हैं। इससे स्मरण करने और स्मरण रखने की शक्तियों को अद्‌भुत पुष्टि मिलती है। मस्तिष्क को तेज करने के लिए छन्द वस्तुतः एक प्रकार से शाण का काम देते हैं।

साहित्य की दृष्टि से छन्दोबद्ध साहित्य जहाँ अधिक रुचिर और चमत्कारपूर्ण होता है, वहाँ वह अधिक दीर्घजीवी भी हो जाता है। विद्वानों का अनुमान है कि इसी कारण से वैदिक काल की कोई भी गद्य-रचना हम तक नहीं पहुंच पाई और छन्दोबद्ध होने के कारण ही वेद इतने दीर्घजीवी रह सके हैं। इसी दृष्टि से प्रायः सभी प्राचीन भारतीय साहित्यकारों और शास्त्रकारों ने छन्दों का आश्रय लिया है। धर्मशास्त्र, फिलॉसफी, व्याकरण, कोश, अलंकार, कथा-साहित्य, पुराण, महाभारत, रामायण, इतिहास, अर्थशास्त्र आदि सभी विषयों को छन्दों में ही लिखा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि छन्दों की इस क्रियात्मक उपयोगिता का भान भारतीयों को बहत पहले से था। 'छान्दोग्य उपनिषद्' में एक रूपक के द्वारा इस भाव को यों प्रकट किया गया है-"देवताओं ने मौत से डरकर अपने-आपको (अपनी कृतियों को) छन्दों में ढाप लिया। मौत से आच्छादन के कारण ही छन्दों को 'छन्द' (छद् = आच्छादने) कहते हैं। छन्द की इसी प्रकार की एक और व्युत्पत्ति भी दी गई है-'अपमत्य वारयितुमाच्छादयतीति छन्द' (सायण)-कलाकार और कलाकृति को छन्द अपमृत्यु (शीघ्र मृत्यु) से बचा लेते हैं।

स्थिरजीविता के साथ ही छन्दोबद्ध साहित्य का मूल पाठ भी गद्य की अपेक्षा अधिक शुद्ध रहता है। उसमें अक्षप या मिलावट की कम गंजाइश है। यदि कहीं कुछ प्रक्षेप की आशंका हो भी जाये तो नियत और निश्चित अक्षरों में बँध होने के कारण छन्द को गद्य की अपेक्षा अधिक प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के साथ शद्ध किया जा सकता है। छन्दों की इस उपयोगिता का उल्लेख भी प्राचीन भारतीयों ने किया है। आरण्य कांड में लिखा है- "छन्द मूल पाठ को पाप कर्म (मिलावट) से बचा लेते हैं। किसी पुस्तक के पाठ में मिलावट करके उसे भ्रष्ट करना निःसन्देह पाप-कर्म है और छन्द विशेष सीमा तक पाठ को इस दोष से बचाये रखते हैं।

टिप्पणी

आज के कलाकार के लिए भी छन्दों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। आज के युग में स्वत: प्रसूति के अभाव में भावुक कवि के लिए छन्द शास्त्र ही एक मात्र अवलम्ब है। जैसे भाषा-सम्बन्धी शुद्धाशुद्ध विवेक व्याकरण के बिना नहीं हो सकता, वैसे ही छन्द-सम्बन्धी शुद्धाशुद्ध विवेक छन्द शास्त्र के बिना सम्भव नहीं।

आज के समालोचकों और सम्पादकों के लिए भी इस शास्त्र का परिज्ञान अनिवार्य रूप से आवश्यक है। हिन्दी का पुराना साहित्य प्राय: सारा-का-सारा छन्दों में ही लिपिबद्ध हुआ है। आठवीं सदी से लेकर उन्नीसवीं सदी तक के हमारे साहित्य की विपुल राशि छन्दों में ही मिलती है। इनके मूल पाठों के विश्वसनीय संस्करण अभी योग्य सम्पादकों की प्रतीक्षा में है। सम्पादन-कला के आधुनिक सिद्धान्तों के अनुसार इन पुराने ग्रन्थों का सम्पादन और इनके मूल पाठ का पुनर्निर्माण छन्दोज्ञान के बिना नितान्त असम्भव है। छन्दों के ज्ञान के बिना न तो हम इन महान् कलाकारों की क्षमता का मूल्यांकन कर सकते हैं और न इनके पाठ का ठीक संशोधन और सम्पादन कर सकते हैं।

छंद की परिभाषा

छंद शब्द संस्कृत के छिदि धतु से बना है, छिदि का अर्थ है ढकना, आच्छादित करना। सर्वप्रथम छंद की चर्चा ऋग्वेद में आई है। छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है कि देवताओं ने मृत्यु भय से अपने अर्थात अपनी कृतियों को, छंद में ढक लिया। शास्त्रीय कथन यह भी है कि कलाकार और कलाकृति को छंद अकाल मृत्यु से बचा लेता है। अत: कहा जा सकता है कि छंद वह सुंदर आवरण है जो कविता-कामिनी के शरीर को ढक कर उसके सौंदर्य में वृद्धि करता है।

जिन रचनाओं में वर्ण, मात्रा, यति, गति, तुक आदि पर बल दिया जाता है वे छंद कहलाते हैं।

अक्षरों की संख्या एवं क्रम मात्रा, गणना तथा यति-गति से संबंधित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद रचना छंद कहलाती है।

छंद के लक्षण

छंद के लक्षण निम्नलिखित हैं

1. छंद मानव हृदय की सौंदर्य भावना को जगाता है।
2. छंद गद्य की शुष्कता से मुक्त होता है।
3. छंदोबद्ध भावाभिव्यक्ति में लय होने से उसमें गेयता आ जाती है।
4. छंदों में भावों की तरलता रहती है।
5. छंदों का प्रभाव हमारे हृदय और मन पर स्थाई पड़ता है।

छंद के अंग

प्राचीन काल से ही काव्य में छंद योजना एक कठिन साधना रही है। छंद रचना की एक विशेष प्रक्रिया सुनिश्चित की गई है। छंद की रचना प्रक्रिया को समझने के लिए उसके अंगों का ज्ञान आवश्यक है। ये अंग इस प्रकार हैं

1. वर्ण, 2. मात्रा, 3. यति, 4. गति, 5. तुक, 6. लघु और गुरु, 7. गण।

1. **वर्ण**-वर्ण को ही अक्षर कहते हैं। यह छोटी-सी ध्वनि है जिसे खंडित नहीं किया जा सकता। वर्ण के दो भेद होते हैं

(i) लघु/ह्रस्व स्वर–जिनके उच्चारण में कम समय (एक मात्रा का समय) लगता है, उसे लघु/ह्रस्व स्वर कहते हैं। जैसे–अ, इ, उ, ऋ।

(ii) दीर्घ स्वर–जिनके उच्चारण में लघु स्वर से अधिक समय (दो मात्रा का समय) लगता है उसे स्वर कहते हैं। जैसे–आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ।

2. **मात्रा** - किसी स्वर के उच्चारण में जितना समय लगता है, उसे मात्रा कहते हैं।

3. **यति**–छंदों को पढ़ते समय कई स्थानों पर विराम लेना पड़ता है, उन्हीं विराम स्थलों को यति की संज्ञा दी गई है।

4. **गति** - छंदों को पढ़ते समय एक प्रकार के प्रवाह की अनुभूति होती है जिसे गति कहा जाता है।

5. **तक** - छंदों के पदान्त में जो अक्षरों की समानता पाई जाती है, उन्हें "तुकश कहते हैं। तुक दो प्रकार के होते हैं–1. तुकांत, 2. अतुकांत।

6. **लघु और गुरु** - छंद शास्त्र में ह्रस्व को लघु और दीर्घ को गुरु कहते हैं।

7. **गण** - वर्णिक में लघु–गुरु के क्रम को बनाए रखने के लिए गणों का प्रयोग होता है। तीन वर्गों के समह को गण की संज्ञा दी गई है। गणों की संख्या 8 होती है जो हैं–यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण, सगण।

छंद के भेद

वर्ण और मात्रा के विचार से छंद के चार भेद हैं जो निम्नलिखित हैं

(1) **मात्रिक छंद** - मात्राओं की गणना के आधर पर जिस छंद की रचना व्यवस्था होती है, उसे मात्रिक छंद कहते हैं। इन छंदों में मात्राओं की समानता के नियम का पूरा–पूरा ध्यान तो रखा जाता है किन्तु वर्णों की समानता पर ध्यान नहीं रखा जाता है। ऐसे छंद मात्रिक छंद कहलाते हैं।

(2) **वर्णिक छंद** - केवल वर्ण गणना के आधर पर रचा गया छंद वर्णिक छंद कहलाता है। इन शब्दों में वर्गों की संख्या और नियम का ध्यान रखा जाता है।

मात्रिक और वर्णिक छंदों के तीन–तीन भेद हैं

(i) **सम मात्रिक छंद** - जिस छंद में सभी चरण समान होते हैं उसे सम मात्रिक छंद कहते हैं।

(ii) **अर्द्ध सम मात्रिक छंद** - जिस छंद के प्रथम और द्वितीय तथा तृतीय और चतुर्थ चरणों में मात्राओं अथवा वर्गों की संख्या बराबर होती है, उसे अर्द्ध सम मात्रिक छंद कहते हैं। जैसे–दोहा, सोरठा, वरवै आदि।

(iii) **विषम मात्रिक छंद** - जिस छंद में 4 से अधिक 6 चरण हों तथा प्रत्येक चरण में मात्राएँ अथवा वर्गों की संख्या भिन्न–भिन्न हो उसे विषम मात्रिक छंद कहते हैं। जैसे–छप्पय, कुण्डलिया आदि।

(3) **उभय छंद** - गणों में वर्गों का बँध होना प्रमुख लक्षण होने के कारण इसे उभय छंद कहते हैं। इन छदों में मात्रा और वर्ण दोनों की समानता बनी रहती है।

(4) **मुक्तक छंद** - चरणों की अनियमित, असमान, स्वच्छंद गति और भावानुकूल यति विधन ही मुक्तक छंद की विशेषता है।

टिप्पणी

4.5 हिन्दी के कुछ प्रमुख छंद

(1) दोहा छंद

लक्षण

1. यह अर्द्धसम मात्रिक छंद होता है।
2. इसमें विषम (पहले व तीसरे) चरणों में 13-13 मात्राएँ तथा सम (दूसरे व चौथे) चरणों में का 11-11 मात्राएँ होती हैं।
3. इसके विषम चरणों के आरम्भ में जगण आना वर्जित माना जाता है, जबकि सम चरणों के अंत में एक लघु वर्ण आना आवश्यक है।
4. यति प्रत्येक चरण के अन्त में होती है।
5. तुक प्रायः सम चरणों में मिलती है।

जैसे

(1) ऽऽ ।। ऽऽ ।ऽ ऽऽ । ऽ।

मेरी भव बाध हरो, राध नागर सोय।

ऽ ।। ऽ ऽऽ ।ऽ ऽ। ।।। ।। ऽ।

जा तन की झाई परे, स्याम हरित दुति होय।

इसके दूसरे और चौथे चरण के अंत में गुरु-लघु होता है। पहले और तीसरे चरण के आरंभ में जगण (नहीं होता है।)

उदाहरण

(2) ।। ऽऽ ऽ। ऽ ।। ऽऽ ।ऽऽ।

रहिमन धगा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।

ऽऽ ऽ ।। ऽ ।ऽ ।ऽ ऽ। ।। ऽ।

टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े गाँठ पड़ जाय।।

(3) ।ऽ ।ऽ ऽ ऽ ।ऽ ऽऽ ऽ। ।ऽ।

बड़ा भया तो क्या भया, जैसे पेड़ खजूर।

ऽऽ ऽ ऽऽ ।ऽ ।। ऽऽ ।। ऽ।

पंछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।

(4) ऽऽ ।।ऽ ।। ऽ ।।। ।ऽ।। ऽ।

हंसा बगुला एक से, रहत सरोवर माँहि।

।।ऽ ऽऽ ऽ।ऽ ऽऽ ऽऽ ऽ।

बगुला ढूँढ माछरी, हंसा मोती खाँहि।।

(5) जहां मंथरा की तरह, बसते दासी-दास।

आज्ञा-पालक राम को, मिलता है वनवास।।

छाया माया एक सी, बिरला जाने कोय।

भगता के पीछे फिरे, सन्मुख भागे सोय।।

(6) मुरली वाले मोहना, मुरली नेक बजाय।

तेरी मुरली मन हरे, घर अँगना न सुहाय।।

हेमचन्द्र के मतानुसार दोहा-छन्द के लक्षण हैं-समे द्वादश ओजे चतुर्दश दोहकः समपाद के अन्तिम स्थान पर स्थित लघु वर्ण को हेमचन्द्र गुरु-वर्ण का मापन देता है। 'अत्र समपादान्ते गुरुद्वयमित्याम्नायःश यह सूत्र विषद किया है।

मम तावन्मतमेतदिह-किमपि यदस्ति तदस्तु रमणीभ्यो रमणीयतरमन्यत् किमपि न अस्तु ।

दोहे के मुख्य २३ प्रकार हैं

1. भ्रमर, 2. सुभ्रमर, 3. शरभ, 4. श्येन, 5. मण्डूक, 6. मर्कट, 7. करभ, 8. नर, 9. हंस, 10. गयंद, 11. पयोधर, 12. बल, 13. पान, 14. त्रिकल, 15. कच्छप, 16. मच्छ, 17. शार्दूल, 18. अहिवर, 19. व्याल, 20. विडाल, 21. उदर, 22. श्वान, 23. सर्प।

दोहे के मूलभूत नियमों को सूचीबद्ध किया जा रहा है

1. दोहे का आदि चरण यानि विषम चरण विषम शब्दों से यानि त्रिकल से प्रारम्भ हो तो शब्दों का संयोजन 3. 3, 2, 3, 2 के अनुसार होगा और चरणांत रगण (ऽ।ऽ) या नगण (।।।) ही होगा।
2. दोहे का आदि चरण यानि विषम चरण सम शब्दों से यानि विकल या चौकल से प्रारम्भ हो तो शब्दों का संयोजन 4, 4, 3, 2 के अनुसार होगा और चरणांत पुनः रगण (ऽ।ऽ) या नगण (1) होगा।

   देखा जाये तो नियम-1 में पाँच कलों के विन्यास में चौथा कल त्रिकल है, या नियम-2 के चार कलों के विन्यास का तीसरा कल त्रिकल है। उसका रूप अवश्य-अवश्य ऐसा होना चाहिये कि उच्चारण के अनुसार मात्रिकता गुरु लघु या ऽ। या 21 ही बने।

   यानि, ध्यातव्य है कि कमल जैसे शब्द का प्रवाह लघु गुरु या ।ऽ या 12 होगा तो इस त्रिकल के स्थान पर ऐसा कोई शब्द त्याज्य ही होना चाहिये। अन्यथा, चरणांत रगण या नगण होता हुआ भी जैसा कि ऊपर लिखा गया है, उच्चारण के अनुसार गेयता का निर्वहन नहीं कर पायेगा। क्योंकि उस तरह के त्रिकल के अंतिम दोनों लघु आपस में मिलकर उच्चारण के अनुसार गुरु वर्ण का आभास देते हैं और विषम चरणांत में दो गुरुओं का आभास होता है।
3. दोहे के सम चरण का संयोजन 4, 4, 3 या 3, 3, 2, 3 के अनुसार होता है। मात्रिक रूप से दोहों के सम चरण का अंत यानि चरणांत गुरु लघु या ऽ। या 2 1 से अवश्य होता है।

कुछ प्रसिद्ध दोहे

कबिरा खड़ा बजार में, लिये लुकाठी हाथ

जो घर जारै आपनो, चलै हमारे साथ

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर

पंछी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर

टिप्पणी

साई इतना दीजिये, जामैं कुटुम समाय

मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय

विद्या धन उद्यम बिन कहो जु पावै कौन

बिना डुलाये ना मिले, ज्यों पंखे का पौन

(2) चौपाई छंद

लक्षण

1. यह सम मात्रिक छंद होता है।
2. इसके प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं।
3. प्रत्येक चरण के अन्त में जगण या तगण आना वर्जित माना जाता है।
4. यति प्रत्येक चरण के अन्त में होती है।
5. तुक सदैव पहले चरण की दूसरे चरण के साथ व तीसरे की चौथे चरण के साथ मिलती है।

चौपाई छंद के उदाहरण स्पष्टीकरण सहित

(1) बिनु पग चले सुने बिनु काना।

कर बिनु कर्म करे विधि नाना।।

तनु बिनु परस नयन बिनु देखा।

गहे घ्राण बिनु वास असेखा।।

स्पष्टीकरण

।। ।। ।ऽ ।ऽ ।। ऽऽ = 16 मात्राएँ

बिनु पग चले सुने बिनु काना।

इसी प्रकार सभी चरणों में 16 मात्राएँ हैं तो यहाँ पर चौपाई छंद है।

(2) जो न होत जग जनम भरत को।

सकल धरम धुर धरनि धरत को।।

स्पष्टीकरण

ऽ । ऽ। ।। ।।। ।।। ऽ = 16 मात्राएँ

जो न होत जग जनम भरत को।

अतः यहाँ पर चौपाई छंद है।

(3) ।।ऽ ।।। ऽ। ।। ऽऽ

धीरज धरम मित्र अरु नारी।

ऽ।। ऽ। ।।।ऽ ऽऽ

आपद काल परखिए चारी।।

(4) ।।।। ऽ। ।ऽ ।। ऽऽ

रघुकुल रीति सदा चलि आई

ऽ। ऽ। ।। ।।। । ऽऽ

प्राण जाय पर वचन न जाई

(5) ।। ।।ऽ। ऽ। ।। ऽ।।

जय हनुमान ज्ञान गुन सागर,

।। ।ऽ। ।। ऽ। ।ऽ।।

जय कपीश तिहुँ लोक उजागर।

(6) ऽ।। ऽ।। ऽ।। ।। ।।

कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि

।।। ।।। ।। ऽ।। ।।। ।।

कहत लषन सन राम हृदय गुनि

(7) ऽ। ऽ। ।।।। ।। ऽऽ

राम दूत अतुलित बल धमा,

ऽ। ऽ। ।।।। ऽऽ

अंजनि पुत्र पवनसुत नामा।।

(8) यह वर माँगउ कृपा निकेता,

बसहुँ हृदय श्री अनुज समेता।

(9) निरखि सिद्ध साधक अनुरागे।

सहज सनेहु सराहन लागे।।

(10) सकल मलिन मनः दीन दुखारी।

देखी सासु आन अनुसारी।

(11) रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ।

उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ।।

(3) हरिगीतिका छंद

28 मात्राओं वाले छन्द को हरिगीतिका छंद कहते हैं। इसमें 16 और 12 मात्राओं पर यति/विराम होता है। अगर चार बार हरिगीतिका लिख दिया जाये तो भी हरिगीतिका का उदाहरण हो जाता है।

अतः हरिगीतिका = 16 + 12 = 28 मात्रा।

लक्षण–

1. यह सम मात्रिक छंद होता है।
2. इसके प्रत्येक चरण में 28 मात्राएँ होती हैं।

टिप्पणी

3. इसमें यति क्रमशः 16 व 12 मात्राओं पर होती है।

4. इसके प्रत्येक चरण में 5वीं, 12वीं, 19वीं, व 26वीं मात्रा लघु होती है।

5. इसके प्रत्येक चरण के अन्त में क्रमशः एक लघु व एक गुरु मात्रा आती है।

6. तुक प्रायः पहले चरण की दूसरे से व तीसरे चरण की चौथे चरण से मिलती है।

उदाहरण

(1) हरिगीतिका हरिगीतिका हरिगीतिका हरिगीतिका

स्पष्टीकरण

।।ऽ।ऽ ।।ऽ।ऽ ।।ऽ।ऽ ।।ऽ।ऽ

हरिगीतिका हरिगीतिका हरिगीतिका हरिगीतिका।।

(2) ।।ऽ ।ऽ ऽ ।ऽ। ऽ ऽ। ।। ऽ ।। ।ऽ

कहती हुई यों उत्तरा के, नेत्र जल से भर गये।

(4) रोला छंद

लक्षण

1. यह सम मात्रिक छंद होता है।

2. इसके प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ होती हैं।

3. इसमें यति क्रमशः 11 व 13 मात्राओं पर होती है।

4. इसमें तुक प्रायः दो-दो चरणों में मिलती है।

उदाहरण-

(1) जो जग हित, पर प्राण, निछावर है कर पाता।

जिसका तन है किसी, लोकहित में लग जाता।

स्पष्टीकरण

ऽ ।। ।। ।। ऽ। ।ऽ।। ऽ ।। ऽऽ =11+13 = 24

जो जग हित पर प्राण, निछावर है कर पाता अतः यहाँ पर रोला छंद है।

(2) नव उज्ज्वल जल धर, हार हीरक सी सोहत।

बिच-बिच छहरत बूंद, मीन मुक्तामन मोहत।।

स्पष्टीकरण -

।। ।ऽ। ।। ऽ। ऽ। ऽ।। ऽ ऽ।। =11 + 13 = 24

नव उज्ज्वल जल धर, हार हीरक सी सोहत।

अतः यहाँ पर रोला छंद है।

(3) ऽ। ऽ।। ऽ।। ऽ। ।। ।।।। ऽ।।

कोउ पापिह पंचत्व, प्राप्त सुनि जमगन धवत = 24 मात्राएँ

ıı ıı ऽıı ऽı ııı ऽऽı ıऽıı

बनि बनि बावन बीर, बढ़त चौचंद मचावत।। = 24 मात्राएँ

ऽ ıı ऽऽ ऽı ıııऽ ऽ ıı ऽıı

पै तकि ताकी लोथ, त्रिपथगा के तट लावत। = 24 मात्राएँ

ऽ ऽ ऽıı ऽı ऽı ऽıı ııऽıı

नौ व्दै ग्यारह होत, तीन पाँचहि बिसरावत।। = 24 मात्राएँ

स्पष्टीकरण - इसके प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ हैं। 11 तथा 13 मात्राओं पर यति हैं। इस कारण यहाँ रोला छंद है।

(4) लोल लहर लहि पवन, एक पे इक इति आवत।

जिमि नरगन मन विविध, मनोरथ करत मिटावत।।

(5) उठो उठो हे वीर! आज तुम निद्रा त्यागो।

करो महासंग्राम, नहीं कायर हो भागो।

(6) तुम्हें वरेगी विजय, अरे यह निश्चय जानो।

भारत के दिन लौट, आयेंगे मेरी मानो।।

(7) ऽऽıı ııऽı ııı ıı ıı ऽıı ऽ

नीलाम्बर परिधन, हरित पट पर सुन्दर है।

ऽı ऽı ıı ııı ऽıऽ ऽऽıı ऽ

सूर्य चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है।

(8) ııऽ ऽı ıऽı ऽı ऽऽ ऽıı ऽ

नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल-तारा-मण्डल है।

(9) ııऽ ऽı ıऽı ऽı ऽऽ ऽıı ऽ

बन्दीजन खगवृंद, शेष फन सिंहासन हैं।

वंद शेष फन सिंहासन है।

(9) हुआ बाल रवि उदय, कनक नभ किरणै फूटीं।

भरित तिमिर पर परम, प्रभामय बनकर टूटीं।

जगत जगमगा उठा, विभा वसुध में फैली।

खुली अलौकिक ज्योति-पुंज की मंजुल थैली।।

(10) ऽ ऽऽ ıı ııı ऽı ऽ ııı ऽ

हे देवी। यह नियम सृष्टि में सदा अटल है,

ıı ııऽ ऽ ıऽ ıऽıı ııऽ ıı ऽ

रह सकता है वहीं, सुरक्षित जिसमें बल है।

टिप्पणी

ऽ।। ऽ ऽ ।ऽ ।।। ऽ ।ऽ ।ऽऽ

निर्बल का है नहीं, जगत में कहीं ठिकाना,

ऽऽ ऽ।। ।ऽ ।ऽ ऽऽ ऽऽ

रक्षा साधन उसे, प्राप्त हों चाहे नाना।।

(11) नन्दन वन था जहाँ, वहीं मरुभूमि बनी है।

जहाँ सघन थे वृक्ष, वहाँ दावाग्नि घनी है।।

जहाँ मधुर मालती, सुरभि रहती थी फैली।

फूट रही है आज, वहाँ पर फूट विषैली।।

(12) ।। ।। ऽऽ ।।। ऽ। ऽऽ। ।।। ऽ

एक नित नव लीला ललित ठानि गोलोक अजिर में।

रमत राधिका संग रास रस रंग रुचिर में।।

(5) कुण्डलिया

लक्षण –

1. यह विषम मात्रिक छंद होता है।
2. यह छंद दोहा व रोला छंदों को मिलाकर बनाया जाता है।
3. इसमें कुल छह चरण होते हैं।
4. इसके प्रथम दो चरणों में 'दोहा' छंद के लक्षण व अन्तिम चार चरणों में 'रोला' छंद के लक्षण पाये जाते हैं।
5. इसके 'दोहा' छंद का अन्तिम चरण 'रोला' छंद के प्रथम चरण में दोहराया जाता है।
6. यह छंद जिस 'शब्द' से आरम्भ होता है, उसी शब्द से समाप्त किया जाता है।
7. इसे गाथा छंद भी कहा जाता है।

छंद का सूत्र – दोहा रोला कुण्डलित, कर कुण्डलिया हो। दोहा और रोला जोड़कर कुण्डलिया छन्द बनता है। कुण्डलिया के प्रथम दो चरणों में दोहा का लक्षण और बाद के चार चरणों में श्रोलाश का लक्षण घटित होता है।

अत: प्रथम दो चरण – 13 +11 = 24 मात्राएँ

बाद के चार चरण – 11+13 = 24 मात्राएँ।

मूलभूत नियम

कुण्डलिया एक विशिष्ट छंद है

यह वस्तुत: दो छंदों का युग्म रूप है। जिसमें पहला छंद दोहा, तो दूसरा छंद रोला होता है। यानि एक दोहा के दो पदों के बाद एक रोला के चार पद।

यानि, कुण्डलिया छ: पंक्तियों या पदों का छंद है

दोहा और रोला के विशिष्ट नियम साझा हो चुके हैं। इसके आगे, इनके संयुक्त प्रारूप को कुण्डलिया छंद बनने के लिए थोड़ी और विशिष्टता अपनानी पड़ती है।

1. दोहा के पहले चरण (विषम चरण) का पहला शब्द या पहला शब्दांश या पहला शब्द-समूह रोला के आखिरी चरण (सम चरण) का शब्द या शब्दांश या शब्द-समूह क्रमशः समान होता है।
2. दोहा का दूसरा सम चरण रोला का पहला विषम चरण होता है। अर्थात् दोहा का दूसरा सम चरण पुनः रोला वाले भाग के पहले चरण की तरह उघृत होता है यानि, दोहा के दूसरे सम चरण का वाक्य रोला के पहले विषम चरण का वाक्य हू-ब-हू होते हैं।
3. बाकी नियमों के लिए दोहा अपने मूल नियमों से सध होता है तो रोला भी अपने मूल नियमों से बँध होता है। इसे अधिक बेहतर, यों समझ सकते हैं

क ख ग घ × × × × × × × × × ×,

× × × × × × × × × × ×, च छज झ ट ठ ड ढ त थ द ..... दोहा

च छ ज झ ट ठ ड ढ त थ द, × × × × × × × × × ×

× × × × × × × × × × × × × × ×

× × × × × × × × × × × ×   क ख ग घ .....रोला

यहाँ दोहे का कखगघ और रोले का कखगघ समान शब्द या शब्दांश या शब्द-समूह होते हैं।

यानि, ध्यातव्य है कि यदि दोहे का कख ही स्वीकारा गया है तो रोला का आखिरी शब्द गघकख हो जायेगा या दोहा का पहला शब्द-समूह कखगघ०० लिया गया है तो रोला का आखिरी शब्द-समूह कखगघ × × होगा।

चूँकि, इस छंद में पहले और आखिरी शब्द या शब्दांश या शब्द-समूह की क्रमशः समानता हुआ करती है, अतः यह प्रक्रम एक शब्द-वृत बनाता हुआ प्रतीत होता है, या यह किसी साँप को कुण्डली मार कर बैठे होने का आभास देता है। यानि, जिस शब्द से प्रारम्भ उसी शब्द से अंत।

इसी कारण, इस छंद का नाम 'कुण्डलिया' पड़ा है।

कुण्डलिया छंद के अन्य प्रारूप भी होते हैं, जहाँ रोला वाले भाग में कवियों द्वारा यति-लोप की छूट ली जाती है या, रोला के चरण विन्यास में आंतरिक परिवर्तन पर कवियों द्वारा कौतुक उत्पन्न करने की चेष्टा की जाती है। लेकिन हम कुण्डलिया के मूलभूत और शाश्वत नियमों का ही अनुपालन करेंगे। ताकि हम कुण्डलिया के शास्त्रीय रूप के अभ्यासी हों।

कुण्डलिया में प्रयुक्त दोहा और रोला के पदों के शब्द-संयोजन का विन्यास हम पुनः देखते हैं-

1. दोहे का आदि चरण यानि विषम चरण विषम शब्दों से यानि त्रिकल से प्रारम्भ हो तो संयोजन 3, 3, 2, 3, 2 होगा और चरणांत रगण (ऽ।ऽ) या नगण (ਪ਼ਪ਼) होगा।
2. दोहे का आदि चरण यानि विषम चरण सम शब्दों से यानि विकल या चौकल से प्रारम्भ हो तो संयोजन 4, 4, 3, 2 होगा और चरणांत रगण (ऽ।ऽ) या नगण (ਪ਼ਪ਼) होगा। 3. दोहे के सम चरण का संयोजन 4, 4, 3 या 3, 3, 2, 3 होता है।
4. रोला के विषम चरण का संयोजन या विन्यास दोहा के सम चरण की तरह ही होता है, यानि 4, 4, 3 या 3, 3, 2, 3।

टिप्पणी

5. रोला के सम चरण का संयोजन 3, 2, 4, 4 या 3, 2, 3, 3, 2 होता है।

उदाहरण

(1) रहिये लट पट काटि दिन, बरु धमें माँ सोय।

छाँह न वाकी बैठिये, जो तरु पतरो होय।।

जो तरु पतरो होय, एक दिन धेखा दै है।

जा दिन चले बयारि, टूटि तब जर ते जैहे।।

कह 'गिरधर' कविराय, छाँह मोटे की गहिये।

पातो सब झरिजाय, तऊ छाया में रहिये।।

स्पष्टीकरण

।।ऽ ।। ।। ऽ। ।। ।। ऽऽ ऽ ऽ। = 24 मात्रायें

रहिये लट पट काटि दिन, बरु धमें माँ सोय।

ऽ। । ऽऽ ऽ। ऽ ऽ।। ।।ऽ ऽ। = 24 मात्रायें

छाँह न वाकी बैठिये, जो तरु पतरो होय

ऽ ।। ।।ऽ ऽ। ऽ। ।। ऽऽ ऽ ऽ = 24 मात्रायें

जो तरु पतरो होय, एक दिन धेखा दै है।

ऽ ।। ।ऽ ।ऽ। ऽ। ।। ।। ऽ ऽऽ = 24 मात्रायें

जो दिन चले बयारि, टूटि तब जर ते जैहे।।

।। ।।।। ।।ऽ। ऽ। ऽऽ ऽ ।।ऽ = 24 मात्रायें

कह 'गिरधर' कविराय, छाँह मोटे की गहिये।

ऽऽ ।। ।।ऽ। ।ऽ ऽऽ ऽ ।।ऽ = 24 मात्रायें

पातो सब झरिजाय, तऊ छाया में रहिये।।

अतः उपर्युक्त स्पष्टीकरण से यह साफ स्पष्ट होता है कि प्रथम दो पंक्तियों में दोहा छंद तथा अंतिम 4 पंक्तियों में रोला छंद है अतः यहाँ पर कुण्डलिया छंद है।

(2) ऽऽ ऽ ।। ।।। ऽ ।ऽ ऽ।ऽ ऽ।

लाठी में गुन बहुत हैं, सदा राखिए संग,

।।ऽ ।। ऽऽ ।ऽ ।ऽ ।ऽऽ ऽ।

गहरे नद नाला जहाँ, तहाँ बचावै अंग।

।ऽ ।ऽऽ ऽ। ।।। ऽऽ ऽ ऽऽ

तहाँ बचावै अंग, झपट कुत्ता को मारै,

।।।। ऽऽऽ। ऽ। ऽ ऽ ऽ ऽऽ

दुसमन दावागीर, होय ता हू को झारे।

(3) ऽऽ ऽ। ।ऽ। ऽ ऽऽ ऽ ।। ऽ।

बीती ताहिं बिसारि दै, आगे की सुधि लेय

ऽ ।। ऽऽ ।।। ऽ ऽऽ ऽ ।। ऽ।

जो बनि आवे सहज में, ताही में चित देय

ऽऽ ऽ ।। ऽ। ऽ। ऽ ऽ ।। ऽऽ

ताही में चित देय, बात जो ही बनि आवे

।।।। ।ऽ । ऽ। ऽ। ऽ ऽ। ऽऽ

दुरजन हँसे न कोय, चित्त में खेद न पावे

।। ।।।। ।।ऽ। ।ऽ ।। ।। ।। ऽऽ

कह गिरधर कविराय, यहै कर मन पर तीती

ऽऽ ऽ ।। ऽ। ।।। ऽऽऽ ऽ ऽऽ

आगे की सुधि लेय, समुझि बीती सो बीती

(4) बिना विचारे जो करे, सो पीछे पछिताय।
काम बिगार आपना, जग म हात हसाय।।
जग में होत हँसाय, चित्त में चौन न पावै।
खान पान सम्मान, राग रंग मनहिं न भावै।।
कह गिरधर कविराय, दुःख कछु टरत न टारै।
खटकत है जिय माहिं, कियो जो बिना विचारे।।

(5) तुक बन्दी का बढ़ रहा, कविता में अति जोर।
लगे नाचने मुर्ग भी, समझि स्वयं को मोर।।
समझि स्वयं को मोर, अर्थ तक नहीं जानते।
पढ़ औरों के गीत, काव्य का रस बखानते।।
कहे कपिल समझाय, चल रही है दलबन्दी।
कविता रोती आज, हँस रही है तुकबन्दी।।

(6) कोलाहल सुनि खगन के, सरवर जनि अनुरागि।
ये सब स्वारथ के सखा, दुरदिन दैहैं त्यागि।
दुरहिन दैहैं त्यागि, तोय तेरो जब जैहैं।
दूरहि ते तज आसि, पास कोऊ नहिं ऐहै।
बरनै 'दीनदयाल' तोहि मथि करि है काहल
ये चल-छल के मूल, भूल मत सुनि कोलाहल।

टिप्पणी

(7) रम्भा झूमत हौ कहा थोरे ही दिन हेत।
तुमसे केते है गये अरु है हैं इति खेत।
अरु हवै है इति खेत मूल लघु खाता
हीने। ताहू पै गज रहे दीठि तुम पै अति दीने।।
बरनै दीनदयाल हमें लखि होत अचम्भा।
एक जन्म के लागि कहा झुकि झूमत रम्भा।

(8) हारे मन तो हार है, जीते मन तो जीत
मन ही तो नरत करे, मन ही करता प्रीत
मन ही करता प्रीत, सभी कुछ मन से होता
मन करता परिहास, अंत में मन ही रोता
कहें 'कपिल' कविराय, गिना करता है तारे
भाषा मन की भिन्न, किसी से कभी न हारे

(9) केवल नदिया ही नहीं, और न जल की धार।
गंगा माँ है, देवि है, है जीवन-आधार।
है जीवन-आधार, सभी को सुख से भरती।
जो भी आता पास, विविध विधि मंगल करती।
'ठकुरेला' कविराय, तारता है गंगा-जल।
गगा अमृत-राशि, नहीं यह नदिया केवल....

(10) ऽऽ ।।ऽ ऽ। ऽ ।।। । ऽऽ ऽ।
साईं अपने भ्रात को, कबहु न दीजै त्रस।
पलक दूर नहिं कीजिये, सदा राखिये पास।
सदा राखिये पास, त्रस, कबहु नहिं दीजै।
त्रस दियौ लंकेश ताहि की गति सुन लीजै।
कह गिरिधर कविराय, राम सों मिलिगौ जाई।
ऽ। ।ऽ।। ऽ। ऽ।।। ऽऽ ऽऽ
पाय विभीशण राज, लंकपति बाजयो साईं।

(6) वीर छंद

1. यह सम मात्रिक छंद होता है।
2. इसके प्रत्येक चरण में 31 मात्रएँ होती हैं।
3. इसके प्रत्येक चरण के अंत में क्रमशरू एक गुरु व एक लघु वर्ण अवश्य आता है।
4. इसमें यति क्रमशरू 16 व 15 मात्रओं पर अथवा 8, 8, 8 व 7 मात्रओं पर होती है।

5. इसमें तुक प्रायरू दो–दो चरणों में मिलती है।

वीर छंद दो पदों के चार चरणों में रचा जाता है जिसमें यति १६–१५ मात्र पर नियत होती है। छंद में विषम चरण का अंत गुरु (ऽ) या लघुलघु (ऽ।) या लघु लघु गुरु (।।ऽ) या गुरु लघु लघु (ऽ।।) से तथा सम चरण का अंत गुरु लघु (ऽ।) से होना अनिवार्य है। इसे आल्हा छंद या मात्रिक सवैया भी कहते हैं। कथ्य अक्सर ओज भरे होते हैं।

इस छंद का आल्हा छंद या मात्रिक सवैया भी कहा जाता है।

धयातव्य है कि इस छंद का श्यथा नाम तथा गुणश की तरह इसके कथ्य अक्सर ओज भरे होते हैं और सुनने वाले के मन में उत्साह और उत्तेजना पैदा करते हैं। इस हिसाब से अतिश्योद्रि पूर्ण अभिव्यंजनाएँ इस छंद का मौलिक गुण हो जाती हैं।

जनश्रुति भी इस छंद की विधा को यों रेखांकित करती है–

का आल्हा मात्रिक छन्द, सवैया, सोलह–पन्द्रह यति अनिवार्य।

गुरु–लघु चरण अन्त में रखिये, सिर्फ वीरता हो स्वीकार्य।

अलंकार अतिशयताकारक, करे राइ को तुरत पहाड़।

ज्यों मिमयाती बकरी सोचे, गँजा रही वन लगा दहाड।

उदाहरण–

(1) सुमिरि भवानी जगदंबा को, औ सारद को सीस नवाय।
वीर–पँवारा अब मैं गाऊँ, माता कण्ड बिराजौ आय।

स्पष्टीकरण

।।। ।ऽऽ ।।ऽऽ ऽ ऽ ऽ।। ऽ ऽ। ।ऽ। = 16 . 15 = 31
सुमिरि भवानी जगदंबा को, औ सारद को सीस नवाय।

(2) दहिने चौकी है नृसिंह की, बाये अंजनि के हनुमान।
सनमुख चौकी जगदंबा की, ऊपरि छत्र कियो भगवान।

स्पष्टीकरण

।।ऽ ऽऽ ऽ ऽ।। ऽ ऽऽ ऽ।। ऽ ।।ऽ। = 16 . 15 = 31
दहिने चौकी है नृसिंह की, बाये अंजनि के हनुमान।
।।।। ऽ ऽऽ। ।।। ।। ऽ। ।ऽ ऽ ऽ।। ऽ।
हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह

(3) ऽ। ।।। ऽऽ ।।ऽ ऽ ऽ। ।ऽ ऽ ।।। ।ऽ।
एक पुरुष भीगे नयनों से, देख रहा था प्रलय प्रवाह।
ऽऽ ।। ऽ ऽ।। ।। ऽ ऽ। ।।। ऽ ऽ। ।।।
नीचे जल था ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन
ऽ। ऽ। ऽ ऽ ।ऽ।ऽ ।ऽ ।ऽ ।। ऽ ऽ।ऽ

टिप्पणी

एक तत्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन।।

(4) जे नर सरन तकैं, मलखे की उनकी आस तकै मलखान
व्यर्थहिं खीर दियो माता ने क्यों नहिं गरल कराये पान?

(5) सुत मंत्री परिवार सनेही संकट परे करत मोहि याद
विपति परे तिन को मग हेरौं मेरे जीवन को धिरकार।

(6) बारह बरिस ल कुक्कुर जीएं, औ तेरह लौ जिये सियार
बरिस अठारह छत्री जीयें, आगे जीवन को धिक्कार,
महारानी लक्ष्मी बाई का चित्रण करती पंद्रियाँ

(7) कर में गह करवाल घूमती, रानी बनी शद्रि साकार।
सिंहवाहिनी, शत्रुघातिनी सी करती थी अरि संहार।।
अश्ववाहिनी बाँध पीठ पै, पुत्री दौड़ती चारों ओर।
अंग्रेजों के छक्के छूटे, दुश्मन का कुछ, चला न जोर।।

बुंदेलखंड की अतिप्रसि) काव्य-ख्रति जगनिक रचित 'आल्ह खण्ड' से कुछ पद प्रस्तुत हैं। अतिश्योद्रि का सुन्दर उदाहरण इन पंद्रियों में देखा जा सकता है, यथा, राग-रागिनी ऊदल गावे, पक्के महल दरारा खाँय।

(8) पहिल बचनियाँ है माता की, बेटा बाघ मारि घर लाउ।
आजु बाघ कल बैरी मारिउ, मोर छतिया की दाह बताउ।।
बिन अहेर के हम ना जावै, चाहे कोटिन करो उपाय।
जहा जिसका बेटा कायर निकले, माता बैठि-बैठि पछताय।।

(9) टॅगी खुपड़िया बाप-चचा की, मांडूगढ़ बरगद की डार।
आधी रतिया की बेला में, खोपड़ी कहे पुकार-पुकार।।
कहवां आल्हा कहवां मलखै, कहवां ऊदल लडैते लाल।
बचि कै आना मांडूगढ़ में, राज बघेल जिये कै काल।।

(10) एक तो सुघर लड़कैया के, दूसरे देवी के वरदान।
नैन सनीचर है ऊदल कै, औ बेहकैया बसे लिलार।।
महुवर बाजि रही आँगन मां, युवती देखि-देखि ठगि जाय।
राग-रागिनी ऊदल गावें, पक्के महल दरारा खाय।।

(11) सावन चिरैया ना घर छोड़े, ना बनिजार बनीजी जाय।
टप-टप बूंद पड़ी खपड़न पर दया न काहूँ ठांव देखाय।।
आल्हा चलिगे ऊदल चलिगे, जइसे राम-लखन चलि जाय।
राजा के डर कोई न बोले, नैना डभकि-डभकि रहि जाय।।

टिप्पणी

(7) सार छंद

28 मात्र, 16, 12 पर यति, अंत में वाचिक भार 22 गागा। कुल चार चरण, क्रमागत दो–दो चरण तुकांत।

उदाहरण–

(1) कितना सुन्दर कितना भोला, था वह बचपन न्यारा,
की पल में हँसना पल में रोना, लगता कितना प्यारा।
जो कि शाम अब जाने क्या हुआ हँसी के, भीतर रो लेते हैं,
रोते–रोते भीतर–भीतर, बाहर हँस देते हैं।

विशेष – इस छंद की मापनी को इस प्रकार लिखा जाता है

22 22	22	22,	22	22	22	
गागा	गागा	गागा	गागा,	गागा	गागा	गागा
फैलुन	फैलुन	फैलुन	फैलुन	फैलुन	फैलुन	फैलुन

किन्तु केवल गुरु स्वरों से बनने वाली इस प्रकार की मापनी द्वारा एक से अधिक लय बन सकती है तथा इसमें स्वरक द्धरुक्नञ्च 121 को 22 मानना पड़ता है जो मापनी की मूल अवधारणा के विरु) है। इसलिए यह मापनी मान्य नहीं है, यह मनगढंत मापनी है। ञलतरू यह छंद मापनी मुद्र ही मानना उचित है।

(2) नये नये छंदों की नैया, काव्य सृजन में तैरे।
ले पतवार सभी दौड़े हैं, रचते छंद घनेरे।

(3) श्वेता जी ने छक्का मारा, गेंद गगन में डोले।
सार छंद भी समझ आ रहा, हमको हौले हौले।

(4) जिसको हम पूजा करते थे, दिल ही दिल में बरसों।
वो कम्बख्त सितमगर निकला, दिल का दुश्मन परसों।
आज यहीं हम दिल दे बैठे, एक नए दिलबर को।
और कहीं अब क्यूँ जाएंगे, छोड़ प्यार के दर को।

(5) दिल के छाले गिनने वाले, होते दिल के काले।
उनकी बातों में फँस जाते, इंसाँ भोले भाले।
गम को अपने पी जाने का जज्बा जिसमें होता।
दिल का दर्द सहन कर लेता, लेकिन कभी न रोता।

(6) स्नेह सिद्र आलिंगन तेरा, मन को है सहलाता।
माँ तेरी सौरभ से मेरा, तन मन भीगा जाता।
तेरी दो आँखों में मेरी, सारी खुशी समायी।
माँ तेरे आँचल में मैंने, सुख की नींदें पायी।

टिप्पणी

(7) नारी के अंतर्मन का दुख, कब किसने है जाना?
जननी है वह इस जीवन की, कहाँ किसी ने माना?
रमणी की नजरों से देखी, मिला जहाँ जब मौका।
इसीलिए तो डूब रही अब, मानवता की नौका
'ललित'

(8) छंदों के धागे में बाँधू, मैं भावों के मोती।
लय में फिर लिख देता हूँ जो, पीर हृदय में होती।
माँ शारद की किरपा से ही, रचना में रस आता।
'राज' समीक्षा कर देते हैं, खुश हो जाती माता।
'ललित'

(9) यमुना जैसा कारा मोहन, राधा माखन जैसी।
मुरली की धुन जैसी प्यारी, राधा नाचे वैसी।
राधा का यूँ हुआ दिवाना, कान्हा हौले हौले।
कान्हा की दीवानी दुनिया, राधे-राधे बोले।

(8) मालिनी छन्द

लक्षण

।।।।।ऽऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽऽ

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलौके:।

1. यह अतिशक्करी जाति का सम वर्णिक छंद होता है।
2. इसके प्रत्येक चरण में 15 वर्ण होते हैं, जो क्रमशः नगण, नगण, मगण, यगण, यगण के रूप में लिखे जाते हैं।
3. इसमें यति क्रमशरू आठ व सात वर्णों पर होती है।

(1) ।।।। ।। ऽऽ ऽ। ऽऽ ।ऽ ऽ
प्रियपति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है?
।। ।।।। ऽऽ ऽ ।ऽऽ ।ऽ ऽ
दुख जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है?
।। ।। ।।ऽ ऽ ऽ। ऽ ऽ ।ऽ ऽ
लख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ,
।। ।।। ।ऽऽ ऽ। ऽऽ ।ऽ ऽ
वह हृदय हमारा नैन तारा कहाँ है?

इस पद्य में दो नगण, एक मगण तथा दो यगण के क्रम से 15 वर्ण हैं। अतरू यह 'मालिनी छनद' है।

(2) "प्रभुदित मथुरा के मानवों को बना के,
सकुशल रह के औ विघ्न बाधा बचाके।
निज प्रिय सूत दोनों, साथ ले के सुखी हो,
जिस दिन पलटेंगे, गेह स्वामी हमारे।।"

(3) पल-पल जिसके मैं पंथ को देखती थी।
निशिदिन जिसके ही धयान में थी बिताती।

(9) दुत विलम्बित छन्द

लक्षण

1. यह सम वर्णिक छंद होता है।
2. इसके प्रत्येक चरण में 12 वर्ण होते हैं, जो क्रमशरू नगण, भगण व रगण के रूप में लिखे जाते हैं।
3. प्रत्येक चरण में बारह वर्ण होने के कारण यह जगती का छंद माना जाता है।
4. इसमें यति प्रत्येक चरण के अन्त में होती है।
5. तुक प्रायरू सम चरणों में मिलती है।

उदाहरण -

।।। ऽ ।।ऽ। ।ऽ। ऽ
दिवस का अवसान समीप था,
।।। ऽ ।। ऽ।। ऽ ।ऽ
गगन था कुछ लोहित हो चला
।। ।ऽ ।। ऽ ।। ऽ।ऽ
तरु शिखा पर थी अब राजती,
।।।ऽ ।। ऽ।। ऽ ।ऽ
कमलिनी कुल बल्लभ की प्रभा

(2) गगन मण्डल में रज छा गई,
दश दिशा बहु शब्दमयी हुई।
विशद गोकुल के प्रति मेह में,
गा बह चला वर स्रोत विनोद का।।

(10) मन्दाक्रान्ता छन्द

ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ।ऽऽ ।ऽऽ

मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैमोभनोतौग युग्मम्।

लक्षण -

टिप्पणी

1. यह अत्यष्टि जाति का सम वर्णिक छंद होता है।
2. इसके प्रत्येक चरण में 17 वर्ण होते हैं, जो क्रमशरू मगण, भगण, नगण, तगण, तगण व गुरु, गुरु के रूप में लिखे जाते हैं।
3. इसमें यति क्रमशरू चार, छह व सात वर्गों पर होती है।

उदाहरण

(1) ऽऽ ऽऽ ।। ।। ऽ। ऽ ।ऽ ऽ। ऽऽ

तारे डूबे, तम टल गया, छा गई व्योम लाली

ऽऽ ऽऽ ।।।। ।ऽ ऽ। ऽऽ ।ऽ ऽ

पंछी बोले, तमचुर जगे, ज्योति फैली दिशा में

ऽऽ ऽऽ ।।। ।ऽ ऽ ऽ। ऽऽ ।ऽ ऽ

शाखा डोली, सकल तरु की, कंज फूले सरों में

ऽऽ ऽऽ ।।।। ।ऽ ऽ।ऽ ऽ। ऽऽ

धीरे धीरे दिनकर कढ़े, तामसी रात बीती

(2) जो मैं कोई विहग उड़ता देखती व्योम में हूँ,

तो उत्कण्ठावश विवश हो चित्त में सोचती हूँ।

होते मेरे निबल तन में पक्ष जो पक्षियों के,

तो यों ही मैं समुद उड़ती श्याम के पास जाती।।

ऽऽ ऽऽ ।।। ।।ऽ ऽ।ऽ ऽ। ऽऽ

(3) पीछे बातें, विविध करती, कांपती कष्ट पाती

आयी लेके, स्व प्रिय पति को, सद्म में बन्द वामा

आशा की है, अमित महिमा, धन्य तू देवि आशा

तू छू के है, मृतक बनते, प्राणियों को जिलाती

(4) सूखी जाती, मलिन लतिका, जो धरा में पड़ी हो

तो तू पंखों, निकट उसको, श्याम के ला गिराना

यों सीधे तू प्रगट करना, प्रीति से वंचिता हो

मेरा होना, अति मलिन औ, सूखते नित्य जाना

(11) वसन्ततिलका छन्द

लक्षण

ऽ ऽ । ऽ।।। ऽ । । ऽ। ऽ ऽ

उद्रावसन्ततिलकातभजाजगौगः

1. यह शक्वरी जाति का सम वर्णिक छंद होता है।

टिप्पणी

2. इसके प्रत्येक चरण में 14 वर्ण होते हैं, जो क्रमशरू तगण, भगण, जगण, जगण व गुरु-गुरु के रूप में लिखे जाते हैं।

3. इसमें यति प्रत्येक चरण के अन्त में होती है।

उदाहरण

(1) ऽ ऽ।ऽ ।।। ऽ। ।ऽ। ऽऽ

थे दीखते परम वृद्ध नितान्त रोगी

ऽ ऽ ।ऽ।। ।ऽ ।। ऽ ।ऽऽ

या थी नवागत वधू गृह में दिखाती

ऽऽ । ऽ। ।।ऽ ।। ऽ ।ऽ ऽ

कोई न और इनको तज के कहीं था

ऽऽ ।ऽ ।।। ऽ।। ऽ ।ऽ ऽ

सूने सभी सदन गोकुल के हुए थे।

(2) ऽऽ ।ऽ ।।। ऽ ।।ऽ ।ऽऽ

बातें बड़ी सरस थे कहते बिहारी,

ऽऽ ।ऽ ।।। ऽ ।। ऽ।ऽ ऽ

छोटे बड़े सकल का हित चाहते थे।

ऽऽ। ऽ। ।। ऽ ।।ऽ ।ऽ ऽ

अत्यन्त प्यार सँग थे मिलते सबों से,

ऽ ऽ ।ऽ।। ।ऽ ।। ऽ ।ऽ ऽ

वे थे सहायक बड़े दुख के दिनों में।।

(3) भू में रमी शरद की कमनीयता थी

नीला अनन्त नभ निर्मल हो गया था

थी छा गई ककुभ में अमिता सितामा

उत्फुल्ल सी प्रख्रति थी प्रतिभास होती

(12) वंशस्थ छन्द

लक्षण -

।ऽ। ऽऽ।।ऽ।ऽ ।ऽ

जतौतु वंशस्थमुदीरितं जरौ

अर्थात्

1. यह 'जगती' जाति का सम वर्णिक छंद होता है।

2. इसके प्रत्येक चरण में बारह वर्ण होते हैं, जो क्रमशरू जगण, तगण, जगण, रगण के रूप में लिखे जाते हैं।

टिप्पणी

3. इसमें यति प्रत्येक चरण के अंत में होती है।

उदाहरण

(1) ।ऽ। ऽ ऽ ।।ऽ। ऽ।ऽ

दिनान्त था वे दिननाथ डूबते,

।ऽ। ऽऽ ।। ऽ। ऽ। ऽ

सधेनु आते गृह ग्वाल बाल थे

।ऽ। ऽ ऽ ।। ऽ ।ऽ।ऽ

दिगन्त में गो-रज थी समुत्थिता

।ऽ। ऽऽ ।।ऽ ।ऽ। ऽ

विषाण नाना बजते सवेणु थे।

(2) मुकुंद चाहे वसुदेव पुत्र हों,

कुमार होवें अथवा ब्रजेश के।

बिके उन्हीं के कर सर्वनेत्र हैं,

बसे हुए हैं मन-नेत्र में वही।।

(13) कवित्त द्धमनहरण कवित्तऋ छंद

लक्षण

1. यह दण्डक श्रेणी का सम वर्णिक छंद होता है।
2. इसके प्रत्येक चरण में 31 वर्ण होते हैं।
3. इसमें लघु-गुरु आदि के नियम लागू नहीं होते हैं, केवल वर्गों की संख्या को गिना जाता है।
4. इसमें यति क्रमशरू 16 व 15 वर्गों पर अथवा 8, 8, 8 व 7 वर्णों पर होती है।

उदाहरण

(1) डार द्रुम पलना बिछौना नव पल्लव के,

सुमन झिंगुला सौहें तन छबि भारी दै।

पवन झुलावै केकी कीर बतरावे 'देव'

कोकिल हलावे हलसावे कर तारी है।

पूरित पराग सो उतारो करै राई नोन,

कंजकली नायिका लतान सिर मारी दै।

मदन महीप जू को बालक बसंत ताहि,

प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै।।

(3) इन्द्र जिमि जंभ पर, बाडव सुअंभ पर

रावण संदभ पर रघुकुल राज है।

पौन वारिवाह पर संभु रतिनाह पर
ज्यों सहस्त्र बाहु पर राम द्विजराज है।
दावा दरमदंड पर चीता मृग झंड पर
भूषण वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर
त्यों मलेच्छ वंस पर सेर सिवराज है।

(3) पात भरी सहरी सकल सुत बार-बारै,
केवट की जाति कछु वेद न पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याहि लागि है राजाजू,
दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।।
गौतम की घरनी ज्यौं तरनी तरेगी मेरी,
प्रभु सो निषाद वै के बात न बढ़ाइहौं
तुलसी के ईस राम! रावरे सौं साँची कहौं
बिना पग धोये नाथ! नाव न चढ़ाइहौं

(4) बिरह बिथा की कथा अकथ अथाह महा
कहत बनै न जौ प्रवीन सुक्रवीनि सौं।
कहै 'रतनाकर' बुझावन लगै ज्यों कान्ह
ऊधौं कौं कहन हेतु व्रज जुव तीनि सौं।
गहबरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यौं।
प्रेम पर्यो चपल चुचाइ पुतरीनि सौं।
नैकु कही बैननि अनेक कही नैननि सौं
रही सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं।

(14) सवैया छंद

लक्षण

1. यह सम वर्णिक छंद होता है।
2. इसके प्रत्येक चरण में 22 से लेकर 26 तक वर्ण होते हैं।
3. वर्गों की संख्या एवं गणों की प्रख्रति के आधार पर इस छंद के ग्यारह भेद किये जाते हैं।

यथा

सवैया के ग्यारह भेद

"मदिरा मालती सुमुखी, चकोर दुर्मिल किरीट।
अरसात अरविन्द सुन्दरी, लवंगलता कुंदल।।"

टिप्पणी

ग्यारह भेदों के क्रमानुसार लक्षण

"सात भगु-दो जलगु में, सात भगुल आठ सभा।
सात भर आठ सलगु में, आठ जल सल एक बढ़ा।।"

सवैया छंद के भेद व लक्षण

क्र.सं.	सवैया का नाम	लक्षण	लक्षण प्रत्येक चरण में वर्णों की संख्या	सवैया की जाति
1.	मदिरा सवैया	सात भगण + एक गुरु	22 वर्ण	आकृति
2.	मालती सवैया	सात भगण + दो गुरु	23 वर्ण	विकृति
3.	सुमुखी सवैया	सात जगण + एक लघु + एक गुरु	23 वर्ण	विकृति
4.	चकोर सवैया	सात भगण + एक गुरु + एक लघु	23 वर्ण	संस्कृति
5.	दुर्मिल सवैया	आठ सगण	24 वर्ण	संस्कृति
6.	किरीट सवैया	आठ भगण	24 वर्ण	संस्कृति
7.	अरसात सवैया	सात भगण + एक रगण	24 वर्ण	संस्कृति
8.	अरविंद सवैया	आठ सगण + एक लघु	25 वर्ण	अतिकृति
9.	सुन्दरी सवैया	आठ सगण + एक गुरु	24 वर्ण	अतिकृति
10.	लवंगलता सवैया	आठ जगण + एक लघु	24 वर्ण	अतिकृति
11.	कुंदलता सवैया	आठ सगण + दो लघु	26 वर्ण	उत्कृति

सवैया के भेद

मदिरा-कुल वर्ण 22। सात भगण अन्त में एक गुरु।

उदाहरण

'राम कौ काम कहा?' 'रिपु जीतहिं' ।
'कौन कबै रिपु जीत्यौ कहाँ?'
'बालि बली', 'छल सों', 'भृगुनंदन
गर्व हर्यो', 'द्विज दीन महा।।'
'दीन सो क्यौं? छिति छत्र हत्यौ
बिन प्राणानि हैहयराज कियो।'
"हैहय कौन?" 'वहै, बिसारी? जिन
खेलत ही तुम्हें बाँधि लियो।।"

मालती-कुल वर्ण 23। सात भगण अन्त में दो गुरु।

उदाहरण

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिह, पुर को तजि डारौं,
आठहुँ सिद्धि नदी निधि को सुख नंद की गाय चराय बिसारौं।
रसखान कहैं इन नैनन ते ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं,
कोटिन हूँ, कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर बारौं।।।

टिप्पणी

सुमुखि–कुल वर्ण 23। प्रत्येक चरण में 7 जगण अन्त में एक लघु एक गुरु।

उदाहरण

हिये वनमाल रसाल घरे, सिरे मोर किरीट महा लसिबो,
कसे कटि पीत–पटी, लकुटी कर, आनन पै मुरली रसिबो।
कालिंदी के तीर खड़े बलबीर अहीरन बाँह गये हँसिबो,
सदा हमरे हिय मंदिर में यह बानक सों करिये बसिबो।।

चकोर–कुल वर्ण 23। सात भगण, अन्त में एक गुरु तथा एक लघु।

उदाहरण

भासत ग्वाल सखी गन मे हरि राजत तारन में जिमि चन्द,
नित्य नयो रचि रास मुद्रा बज में हरि खेलत आनंद कन्द।
या छबि काज भये ब्रज बासि चकोर पुनीत लखै नंद नन्द,
धन्य वही नर नार नारि सराहत या छवि काटत जो भव फन्द।।

किरीट–कुल वर्ण 24। प्रत्येक चरण में 8 भगण।

उदाहरण –

मानुस हों तो वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारिन,
की जो पसु ही तो कहा बसु मेरो, चरी नित नंद की धेनु मझारिन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जु भयो कर पत्र पुरंदर धारनि,
मा जो खग ही तो बसेरो करी मिलि, कालिदि कूल कंदब की डारनि।।

दुर्मिल–कुल वर्ण 24। प्रत्येक चरण में 8 सगण।

उदाहरण

इसके अनुरूप कहै किसको, यह देश सुदेश समुन्नत है।
समझे सुरलोक समान उसे, उनका अनुमान असंगत है।
कवि कोविद–वृन्द बखान रहे, सबका अनुभूत यही मत है।
उपमान विहीन रचा विधि ने, बस भारत के सम भारत है।

अरसात–कुल वर्ण 24। प्रत्येक चरण में 7 भगण और एक रगण।

उदाहरण

भासत रूद्रज धयानिन में पुनि सार सुतीजस बानिन ठानिये,
नारद ज्ञानिन पानिन गंग सुरानिन में विकटोरिय मानिये।
दानिन में जस कर्ण बड़े तस भारत अम्ब भली उर आनिये,
बेटन के दुख मेटन में कबहु अरसात नहीं पुर जानिये।।

सुन्दरी–कुल वर्ण 25। प्रत्येक चरण में 8 सगण अन्त में एक गुरु।

टिप्पणी

उदाहरण

सुख-शान्ति रहे सब ओर सदा, अविवेक तथा अघ पास न आवें।
गुण-शील तथा बल-बुद्धि बढ़ें, हठ-दैर-विरोध घटे मिट जावें।
सब उन्नति के पथ में विचरे रति पूर्ण परस्पर पुण्य कमावें।
ख़ढ़ निश्चय और निरामय होकर निर्भय जीवन में जय पावें।।
अरविन्द-कुल वर्ण 25। प्रत्येक चरण में 8 सगण अन्त में एक लघु।

उदाहरण

सबसों लघुआपहिं नियजू यह धर्म सनातन जान सुजान।
जबहिं सुनती अस आनि दसै, उर संपति सर्व विराजत आन।
प्रभु व्याप रहयो सचराचर में तजि बैर सुभद्रि सजौ मतिमान।
नित चम पदै अरविंदन को मकरंद पियो सुमिलिंद समान।।
लवंगलता-कुल वर्ण 25। प्रत्येक चरण में 8 जगण अन्त में एक लघु।

उदाहरण

जुयोग लवंग लतानि लयो तब सूझ परे न कछू घर बाहर।
अरे मन चंचल नेक विचार नहीं यह सार असार सरासर।
भजौ रघुनन्दन पाच निकंदन श्री जग बंदन नित्य हियाधर।
तजौ कुमती धरिये सुमति शुभ रामहि राम रटौ निसि बासर।।
सुख (कुन्दलता)-कुल वर्ण 26। प्रत्येक चरण में 8 सगण और अन्त में दो लघु वर्ण।

उदाहरण

सबसों ललुआ मिलिके रहिये मन जीवन वन मूरि सुनौ मनमोहन
इनि बोधि खयाय पियाय सखा सँग जाहु कहै मृदु सौं वन जोहन
धरि मात रजायसु सोस हरि नित यामुन कच्छ फिर सह गोपन
यहि भाँति हरी जसुदा उपदेसहि माषत नेह लहैं सुख सों धन।।

अन्य उदाहरण

ऽ ।। ऽ।। ऽ ।। ऽ ।।ऽ।। ऽ ।।ऽ।। ऽ।ऽ

(1) सो कर मांगन को बलि पै करतारहु ने करतार पसारियो को

७ भगण, १ रगण = अरसात सवैया

।। ऽ। ।ऽ ।।ऽ।। ऽ ।।ऽ। ।ऽ ।।ऽ। ।ऽ।

(2) नित राम पदै अरविंदन को मकरंद पियो सुमिलिंद समाना

।। ऽ। ।ऽ ।। ऽ। ।ऽ ।।ऽ। ।ऽ ।। ऽ। । ऽऽ

टिप्पणी

(3) सुख शांति रहे सब ओर सदा अविवेक तथा अघ पास न आवे

8 सगण . 1 गुरु = सुन्दरी सवैया

।ऽ ।।ऽ।। ऽ। ।ऽ।। ऽ ।। ऽ।। ।ऽ। ।ऽ ।।

(4) भजौ रघुनंदन पाप निकंदन श्री जग बंदन नित्य हिये धर।

8 जगण + 1 लघु = लवंगलता सवैया

।। ऽ। ।ऽ ।।ऽ ।।ऽ।। ऽ।। ऽ। ।ऽ ।। ऽ ।।

(5) यहि भाँति हरी जसुदा उपदेसहि भाषत नेह लहैं सुख सों धन।

8 सगण + 2 गुरु = कुंदलता या सुख सवैया

।। ऽ। ।ऽ ।।ऽ ।।ऽ ।। ऽ। ।ऽ।। ऽ।।ऽ

(6) जय राम रमा रमनं शमनं भव ताप भयाकुल पाहिजनं

8 सगण = दुर्मिल सवैया

।। ऽ। ।ऽ ।। ऽ ।।ऽ ।। ऽ। ।ऽ ।।ऽ ।।ऽ

(7) सखि नील नभः सर में उतरा यह हंस अहा तरता तरता

8 सगण = दुर्मिल सवैया

ऽऽ ।ऽ।। ऽ।। ऽ ।। ऽ।। ऽ। ।ऽ ।।ऽ

(8) भस्म लगावत शंकर के अहि लोचन आनि परी झरिकै

7 भगण + 1 गुरु = मदिरा सवैया

ऽ ।।ऽ ।। ऽ।।ऽ ।। ऽ। ।ऽ ।ऽ ।। ऽ ।। ऽऽ

(9) या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।

7 भगण + 1 गुरु = मालती सवैया

।ऽ ।।ऽ। ।ऽ। ।ऽ ।।ऽ। ।ऽ। ।ऽ ।।ऽ

(10) हिये वनमाल रसाल धरे सिर मोर किरीट महा लसिबो

7 जगण + 1 लघु + 1 गुरु = सुमुखी सवैया

ऽ। ।ऽ ।। ऽ। ।ऽ।। ऽ ।। ऽ।। ऽ ।। ऽ।

(11) धन्य वही नर नारि सराहत या छवि काटत जो भव फंद

।। ऽ। ।ऽ ।। ऽ ।।ऽ ।।ऽ । ।ऽ ।। ऽ। ।ऽ

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहे जहँ एक घटी

ऽ।। ऽ। ।ऽ ऽ।ऽ। ।ऽ ।। ऽ।। ऽ। । ऽ।।

मानुष हो तु वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव कि ग्वारिन

8 भगण = किरीट सवैया

टिप्पणी

4.6 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. छंद की परिभाषा दीजिए।
2. छंद के लक्षण बताइये।
3. छंद के कितने अंग हैं? संक्षिप्त विवरण दीजिए।
4. छंद के भेदों को संक्षेप में वर्णित कीजिए।
5. सार छंद का उदाहरण सहित विवरण दीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. छंदों की उत्पत्ति के विषय में विस्तारपूर्वक लिखिए।
2. छंदों का विकास किस प्रकार हुआ? उल्लेख कीजिए।
3. छंद साहित्य की रूप-रेखा का वर्णन कीजिए।
4. छंदों की उपादेयता पर प्रकाश डालिए।
5. सवैया छंद तथा उसके भेदों को उदाहरणों सहित स्पष्ट कीजिए।

♦♦♦♦♦

इकाई 5

आधुनिक छंद

संरचना

5.1 गजल छंद
5.2 सॉनेट छंद
5.3 हाइकु छंद
5.4 नवगीत
5.5 छन्द-शास्त्र की परिभाषाएँ
5.6 पिंगल के दशाक्षर
5.7 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

5.1 गजल छंद

गजल एक सुकोमल विध है। वह नफासत पसंद है। हाथ लगाए मैली होती है, उसे स्वच्छता तथा सलीके से स्पर्श करना होता है। गजल चूंकि एक गेय कविता है, अत: उसका किसी बहर अथवा छंद में होना अपरिहार्य है। गजलकार को इसके लिए, यदि रचना बहर में है तो "तख्ती" का और अगर छंद में है तो मात्रा गणना का व्यावहारिक ज्ञान एवं अभ्यास होना ही पर्याप्त है, जो कोई कठिन कार्य नहीं। अत: इसके लिये गजलकार को अरूजी अथवा छंदशास्त्री बनने की बिल्कुल भी आवश्यकता ही है, इस पुस्तक में "तख्ती" तथा 'मात्र-गणना' की विधियों को, उदाहरणों सहित, विस्तार से समझाया गया है। अत: इन विधियों को सीखने के लिये कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं। निरंतर अभ्यास से इनमें दक्षता प्राप्त की जा सकती है।

बहर अथवा छंद, गजल की पहली प्राथमिकता है। "कविता और छंद का संबंध उसी प्रकार का है जिस प्रकार आत्मा और शरीर का। आत्मा की सक्रियता शरीर के द्वारा ही है। इसी प्रकार कविता की प्रभावोत्पादकता भी छंद के द्वारा ही है।"

गजल तो एक गेय कविता है, अत: उसमें छंदों की महत्वपूर्ण भूमिका है। बहर अगर गजल की जान है तो छंद गजल के प्राण। गजल का फार्म (स्वरूप) बहर अथवा छंद बिना निष्प्राण है। यदि उसको जिंदा रखना है तो उसे हर प्रकार स्वस्थ रखना हमारा दायित्व बनता है। गजल के बहर और छंद के बारे में इससे ज्यादा और क्या कहा जा सकता है। अब यह गजलकारों पर निर्भर करता है कि वे बहर के लिये 'तख्ती करना अथवा छंद के लिये 'मात्र-गणना' सही-सही करना मन लगाकर सीखें और गजलों में प्राण फूंके और उन्हें तरोताजा बनाये। "तख्ती" और 'मात्र-गणना' की विधियाँ आगे यथास्थान दी जा रही हैं।

अब गजल का फार्म, बाह्य (स्वरूप) कैसा होता है तथा 'जमीने शेर' किसे कहते हैं, काफिये क्या होते हैं, रदीफ क्या होती है, मत्ला क्या होता है, हुस्ने मत्ला क्या होता है, तथा मक्ता क्या होता है, शेर क्या होता है। हुस्ने मत्ला क्या होता है, तथा मक्ता क्या है। इन सवालों का स्पष्टीकरण आइये शुरू करते हैं मान लें हमें निम्नलिखित मिसरे के आधर पर गजल लिखने के लिये कहा गया

'हाल कोई तो पूछता मुझसे'

वस्तुत: इस पंक्ति के आधर पर हिंदी पत्रिका फनकार, ग्वालियर के अंक फरवरी 2005 में पाठकों द्वारा कही गई कई गजलें प्रकाशित हुई हैं। जनाब कमरउद्दीन बरतर साहब का यह अभिनव प्रयोग है, जो हर दृष्टि से सराहनीय है। उपर्युक्त मिसरे में प्रयुक्त काफिया (तुकान्त शब्द) पूछता है और उसके पश्चात् आने वाली रदीफ (जो पूरी गजल में अपरिवर्तित ही रहती है) मुझसे है। मिसरे का वज्न है-बहरे-फीफ अर्थात् फाइलातुन, मफाइलुन, फालुन/फ-इलुन। इस वज्न के अंत में फालुन और फ-इलुन के आखरि में एक-एक शब्द, आवश्यकतानुसार बढ़ाया जा सकता है। जिस किसी वज्न में शुरू में फाइलातुन आता है, उसमें एक अक्षर कम करके, फ इ ला तु न भी आवश्यकतानुसार लाया जा सकता है। अत: उपर्युक्त मिसरा-वज्न/बहर + काफिया + रदीफ प्रस्तुत करता है, इसी को जमीने शेर करते हैं।

रदीफ काफिया को समझाने के लिये मोना हैदराबादी का यह शेर पठनीय है

साथ देके रदीफ आगे आगे चलीं।
काफियों को लेकर चली है गजल॥

इस बयाँ को साकार करते हुए 'हाल कोई तो पूछता मुझसे' के आधर पर फनकार पत्रिका में पाठकों की जो जो गजलें पेश हुई हैं, उनसे कुछ गजलें, कुछ अंश साभार यहाँ पेश हैं ताकि गजल के फार्म को सरलतापूर्वक समझा जा सके

टिप्पणी

1. राज सागरी, खरगोन (म०प्र०)
   खद पे कैसे हो तब्सिरा मुझसे
   दूर रखो ये आईना मुझसे....मतला
   उसकी आँखों ने क्या कहा मुझसे
   उम्र भर मैं रहा खफा मुझसे....हुस्ने मतला
   खुन के चूंट पीके बैठा हूँ
   जहर का पूछ जायका मुझसे
   कौन था 'राज'. आईना चेहरा
   जिसने मुझको मिला दिया मुझसे....मक्ता।
2. मना० नरहरि, विरार (महाराष्ट्र)
   था अगर शिकवा या गिला मुझसे
   हाल कोई तो पूछता मुझसे जिस्म
   मिट्टी सा कर दिया मेरा
   तोड़कर उसने सिलसिला मुझसे।
3. शैलजा नरहरि, विरार (महाराष्ट्र)
   बाद मुद्दत के वो मिला मुझसे
   हाल कोई तो पूछता मुझसे
   बाँधने की फिजूल कोशिश की
   छूटना तय ही था सिरा मुझसे
   रोशनी को फरेब देना था
   तीरगी ने लिया पता मुझसे।
4. मरियम गजला, थाने (महाराष्ट्र)
   इस तरह आज वो मिला मुझसे
   हो नहीं जैसे आशना मुझसे
   दे गया धूप की मुझे चादर
   ले गया रात की रिदा मुझसे
   कुछ गजाला' मुझे रही रंजिश
   कुछ तो उसको भी था गिला मुझसे।
5. डॉ० नलिनी विभा नाजली, हमीरपुर (हि०प्र०)
   दोस्त रखते जो राब्ता मुझसे
   हाल कोई तो पूछता मुझसे

टिप्पणी

मेरी कश्ती डुबि ही दी आखिर
था खफा मेरा नुखुदा मुझसे
'नाजली' बनके किस कदर मासूम
पूछता है वो मुद्दाआ मुझसे।

6. द्विवजेन्द्र द्विज, कांगड़ा (हि०प्र०)
अब है मेरा मुकाबला मुझसे
मेरा साया तो डर गया मुझसे
इंतिहा द्विज न जाने क्या होगी
देखी जाए न इब्तिदा मुझसे।

7. दा० विनय मिश्र, अलवर (राजस्थान)
रात ने जाने क्या सुना मुझसे
ले गई धूप का पता मुझसे
जैसे गुल में समाई है खुशबू
वो कहाँ है भला जुदा मुझसे।

8. जनाब कमरउद्दीन सा० बरतर, ग्वालियर (म०प्र०)
अब मुखातिब है आईना मुझसे
अब मेरा सामना हुआ मुझसे
वो जो पत्थर ही मुझको समझेगा
दूर ही दूर जो रहा मुझसे
पूछने वाले की तरह बरतर
हाल कोई तो पूछता मुझसे

बकौल अमरजीत सिंह अंबाली के शेर की जुबानी

मत्ले से मक्के तलक की ये मसाफत महरबा!
दर्द से रिश्ते में जैसे गम पिरोती है गजल।

उर्दू बरहों के अनुरूप हिंदी के कई छंद हैं। बात शुरू करते हैं बहरे-मुतकारिब की मुजाहिफ (उवकपपिमक) शक्ल से मुजाहिफ शक्लों के अपने-अपने नाम हैं जो याद रखने मुश्किल हैं। उससे कुछ ज्यादा फर्क नहीं पड़ता। ये मुजाहिफ शक्ल बहरे-मुतदारिक में भी रिपीट होती है। ये मुजाहिफ शक्ल है

बहरे-मुतकारिब की मुजाहिफ शक्ल-

15 फेलुन

22 22 22 22 22 22 22 2

टिप्पणी

इसका एक उदाहरण

तुम पूछो और मैं न बताऊँ ऐसे तो हालात नहीं
एक जरा सा दिल टूटा है और तो कोई बात नहीं

अब किस एक गुरु (फेलुन) के स्थान पर दो लघु (फ, इ, लुन) आने हैं इसके भी नियम हैं जिनका सख्ताई से पालन नहीं होता। अमूमन पहले और अंतिम गुरु (फेलुन) को छोड़कर बीच का कोई गुरु दो लघुओं से रिपलेस कर लिया जाता है। जैसे कि इस उदाहरण में

।। ऽऽ ऽ। ऽ । ।ऽऽ ।। ऽ ऽऽ। ।ऽ

तुम पूछो और मैं न बताऊँ ऐसे तो हालात नहीं

।। ।ऽ ऽ ।। ऽऽ ऽ ऽ।ऽ ऽऽ ऽ। ।ऽ

एक जरा सा दिल टूटा है और तो कोई बात नहीं

पहले मिसरे में छठे स्थान पर, 14वें स्थान पर, दूसरे में दूसरे, दसवें और 14वें स्थान का गुरु दो लघुओं से रिपलेस हुआ। (हिंदी में स्थानों की गिनती और होगी) सो ये दूसरी गजलों में कुछ और हो सकता है। अमूमन पहले और अंतिम स्थान पर गुरु का प्रयोग होता है। अब बात करते हैं मात्रिक छंद की –

।। ऽऽ ऽ। ऽ। । ऽऽ ।। ऽऽ। ।ऽ = 30 मात्राएँ

तुम पूछो और मैं न बताऊँ ऐसे तो हालात नहीं

।। ।ऽ ऽ ।। ऽऽ ऽ ऽ। ऽ ऽऽ ।ऽ ।ऽ = 30 मात्राएँ

एक जरा सा दिल टूटा है और तो कोई बात नहीं

कुछ शायर बहर (फेलुन) की इस तरकीब को नहीं निभाते बस मात्रा गिनकर गजल का हिंदीकरण कर देते हैं और इसे मात्रिक छंद बता देते हैं।

एक जरा सा दिल टूटा है और तो कोई बात नहीं

इस मिसरे में थोड़ा-सा हेर-फेर करते हैं फिर देखते हैं कि लय पर क्या प्रभाव पड़ता हैइस मिसरे को यूँ कर देते हैं

जरा एक ये दिल टूटा है और तो कोई बात नहीं

अब पूरा शेर इसी रूप में-

तुम पूछो और मैं न बताऊँ ऐसे तो हालात नहीं

जरा एक ये दिल टूटा है और तो कोई बात नहीं

और अब इसे पढ़िए-

तुम पूछो और मैं न बताऊँ ऐसे तो हालात नहीं

एक जरा सा दिल टूटा है और तो कोई बात नहीं

फर्क आपके सामने है। मात्राएँ दोनों तरह 30 ही हैं लेकिन लय बिगड़ गई क्योंकि बहर के अनुरूप शेर नहीं है। कतील साहब ने इस मीटर में कई गजलें कहीं और इसे अमूमन हिंदी मीटर या मीर का मीटर भी कह लेते हैं। इस मीटर में जो लय है वो दूसरी बहरों में नहीं, बहुत आनंद आता है इस मीटर में लिखी गजलों को पढ़कर। जब मात्रिक छंदों के लिहाज से बात करते हैं तो मुफाईलुन (1222) और फाइलातुन (2122) में कोई फर्क नहीं मिलता दोनों की मात्राओं की गिनती एक जैसी है और बहर

टिप्पणी

के लिहाज से जमीन आसमान का फर्क पड़ जाता है। अगर हम छंद के हिसाब से भी लिखें तो उस छंद के कायदे-कानून का तो पालन करें और कम-से-कम मात्रिक छंदों में मात्रा तो न गिराएँ। अगर मात्रिक छंद में मात्रा को ही गिरा दिया तो फिर क्या फायदा। जिस छंद में लिख रहे हैं उसका पालन तो कर लें।

उदाहरण के लिए

बहर-मुतकारिबानमालामाल

फऊलुन फऊलुन फऊलुन फऊलुन

हिंदी में इससे मिलता-जुलता भुजंगपयात के वर्ण वृत प्रति चार रगण। (155) और मात्रिक के हिसाब से प्रति चरण बीस मात्राएँ और मात्रिक रूप में भी ये शर्त है कि पहली, छठी, ग्यारहवीं और सोलहवीं मात्रा लघु हो। अब कम-से-कम इस शर्त को तो हम मान लें और अगर हम वर्ण व्रतों में लिखें तो फिर तो झगड़ा ही खत्म हो जाता है। आखिर ये बहर-विज्ञान भी तो संस्कृत से ही निकला है। थोड़ी-सी मेहनत तो लाजिमी है ही। सारी बहरें हर शायर के अवचेतन मन में होती हैं, जब थोड़ा ज्ञान हो जाता है तो पता चल जाता है कि ये मिसरा जो मैं गुनगुना रहा था ये तो फलां बहर में है और द्विज जी ने एक बार समझाया था कि बहर तो खाल या साँचे की तरह होती है और शब्द उसमें ठूसा जाने वाला भूसा मात्र है, शब्द टूट सकते हैं (कबीरा, कबिरा हो सकता है) लेकिन लय/बहर नहीं। बहर सही में आत्मा है और शब्द शरीर।

गजल की तकनीक एवं उसकी संरचना

गजल की बाहरी संरचना में छंद-काफिया-रदीफ का महत्वपूर्ण योगदान है। छंद को अथवा बहर, रचना का सही छंदोबद्ध होना जरूरी होता है, साथ में छंद-बहर की विशिष्ट लय का निर्वाह भी आवश्यक है। गजल की काफियायुक्त प्रारम्भिक दो पंक्तियों को "मतला" तथा अंतिम दो पंक्तियों को, जिसमें शायर अपना उपनाम लाता है उसे "मक्ता" कहते हैं। काफिया तुकांत शब्द को कहते हैं। रदीफ, काफियों के पश्चात आने वाला वह शब्द अथवा वाक्य है, जो गजल में बिना किसी परिवर्तन के दोहराया जाता है। चूंकि मतके में प्रयुक्त काफियों पर, गजल के अन्य काफिये आधरित होते हैं, अत: मतले में सही काफिये आयें, यह देखना जरूरी है।

जैसे-

1. मतले में या तो दोनों काफिये विशुद्ध मूल शब्द हों, जैसे -

   हर हकीकत में बआंदजे-तमाशा देखा -

   खूब देखा तेरे जलवों को मगर क्या देखा।

2. एक विशुद्ध मूल शब्द और दूसरा बढ़ाया हुआ शब्द, जैसे-

   जब से उसकी निगाह बदली है

   सारी दुनिया नयी-नयी सी है।

3. दोनों ही बढ़ाये हुए अंश निकाल देने पर समान तुकांत शब्द शेष बचें, जैसे

   हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिये

   इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिये।

4. दोनों बढ़ाये हुए शब्दों में व्याकरण भेद हो, जैसे-

   पान देख मुझ को यूँ न दुश्मनी से

   इतनी नफरत न कर आदमी से।

5. यदि मतले में खफा-वफा जैसे अथवा मन-चमन जैसे काफिये लाये जाते हैं तो उस अवस्था में क्रमशः "फ" व्यंजन-साम्य वाले काफिये ही पूरी गजल में लाये जायें या अपवादस्वरूप उनकी जगह अन्य व्यंजन भी लाये जा सकते हैं, जैसा कि डॉ० इकबाल अपनी एक गजल में लाये हैं-

   एक गजल म लापहनाका

   फिर चिरागे-लाल से रौशन हुए कोहो-दमन

   मुझको फिर नग्मों पे उकसाने लगा मुर्गे-चमन

   मन की दौलत हाथ आती है तो फिर जाती नहीं

   तन की दौलत छाँव है, आता है धन जाता है धन।

इस गजल के अन्य काफिये है बन, फन, तन आदि। काफिया-शास्त्र बड़ा है। यहाँ केवल मुख्य-मुख्य बातें ही बताई जा सकती हैं। सबसे महत्वपूर्ण है गजल के अन्तरंग की संरचना, जिसके माध्यम से शायर अपने मनोभाव, उद्‌गार, विचार, अनुभव, दुःख-दर्द तथा अपनी अनुभूतियाँ अदि व्यक्त करता है, अतः अन्तरंग बहुत ही धीर-गंभीर, अर्थपूर्ण तर्कसंगत तथा अंतरमन की गहराई से प्रस्फुटित होने वाला होना चाहिये। अंतरंग को जितना परिष्कृत किया जाए, उतना ही वह प्रभावशाली बनता है। तगज्जुल, अंदाजे-बयाँ कुछ ऐसा हो कि शेर की पहली पंक्ति सुनने पर हम दूसरी पंक्ति सुनने को लालायित हो उठे तथा उसे सुनते ही अभिभूत हो जाएँ। यह प्रसंग बहुत बड़ा है अतः इसे यहाँ इतना ही दिया जा सकता है।

अच्छी गजल की विशेषताएँ

ऊपर गजल के अन्तरंग के बारे में जो बातें बताई गई हैं तथा उनके अतिरिक्त गजल समसामयिक, जनोपयोगी तथा अपनी धरती और परिवेष से जुड़ी हो, कथ्य एवं शिल्प में सामंजस्य हो, भाषा सरस-सरल हो। पाठकों एवं श्रोताओं में वही भाव सम्प्रेषित हो, जो गजलकार व्यक्त करना चाहता है, और सबसे बड़ी बात यह कि वह अंतरमन में गहरे उतर जाए, कुछ सोचने को विवश करे, जिसके शेर उदाहरणस्वरूप पेश किये जा सकें तथा जिसके शब्दों के उच्चारण प्रामाणिक हों, बहर में हो अथवा सही छंदोबद्ध हो।

हिंदी गजलों में उर्दू शब्दों का प्रयोग

जहाँ बात न बनती हो, वहाँ उर्दू शब्द आने से बात बन जाए, तब वहाँ उर्दू शब्द लाना ही चाहिये, परंत उसके सही उच्चारण के साथ, क्योंकि लबो-लहजा उर्दू शब्दों के उच्चारण से ही बनता है, इसके लिये उर्दू शब्दों के हलन्त अक्षरों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

दोहा छंद में गजल लिखने का प्रयोग

आश्चर्य तो इस बात का है कि जब गजल को दोहे से प्रेरित बताया जा रहा है तो गजल-लेखन में उसका प्रयोग अब इतनी देरी से क्यों किया जा रहा है. पहले क्यों नहीं किया गया? गजलों को सभी अच्छी बहरें और अच्छे छंद ग्राह्य हैं, बशर्ते कि वो संगीतात्मक हो। दोहा छंद भी अच्छा छंद है और

टिप्पणी

इसकी दोनों पंक्तियाँ तुकांत होने के कारण गजल के मतले के अनुरूप भी है। हाँ, गजल की स्वतंत्र पंक्तियों को दोहों में किस प्रकार फिट किया जाएगा, यह विचारणीय है। कुछ प्रचलित बहरें ऐसी हैं जो हिंदी वाक्य छंदों के समकक्ष हैं।

जैसे

1. मानव भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती बहरे-रजज/हरिगीतिका
2. हाँ, कमल के फूल पाना चाहते हैं इसलिये

   बहरे-रमल/गीतिका
3. कमल बावना के तुम्हें हैं समर्पित

   बहरे-मुतकारिब/भुजंगप्रयात
4. मेघ आकर भी बरसे नहीं

   बहरे-मुतदारिक/महालक्ष्मी
5. परिंदे अब भी पर तोले हुए हैं

   बहरे-रज/सुमेरु

   ऐसे ही और भी बहरों के समकक्ष, हिंदी छंदों के उदाहरण दिये जा सकते हैं।

5.2 सॉनेट छंद

हिंदी में सॉनेट लिखा नहीं जा सकता है। अंग्रेजी काव्य की कोई भी छंद बद्ध रचना हिंदी में उसी छंद में नहीं लिखी जा सकती है क्योंकि छंद भाषा विशेष में ही होता है। जैसे अंग्रेजी में-दोहा, रोला, चौपाई छंद नहीं लिख सकते हैं। इसका कारण यह है कि-अंग्रेजी कविता की इकाई सिलेबल (लससंइसम) होता है।

1. जो उच्चारण की इकाई है और
2. जो 5 अक्षर तक भी हो सकता है;

जबकि हिंदी कविता की इकाई

1. वर्ण का क्रम
2. अक्षर और अक्षर की मात्रा होती है

हिंदी में दो तरह के छंद होते हैं

वर्णिक छंद-वर्णों का क्रम और मात्रा के अनुसार।

मात्रिक छंद-मात्राओं की संख्या के अनुसार।

अब सॉनेट को देखें।

सॉनेट 14 पंक्तियों की कविता होती है जो दो तरह से व्यवस्थित हो सकता है।

इटालियन सॉनेट-8 + 6 पंक्ति।

इंग्लिश सॉनेट-4, 4, 4 + 2 पंक्ति।

पर सॉनेट की हर पंक्ति आयंबिक पेंटामीटर (Tambic Pentameter) में होती है।

आयंबिक-बिना बलाघात (बिना जोर दे के उच्चारित)/बलाघातयुक्त (जोर दे के बोला जाए) क्रम में हैं।

जैसे नीचे ब्राइट-बिना बलाघात के है। स्टार बलाघात युक्त है।

एक उदाहरण से देखें।

"Bright star || would I || were sted || fast as || thou art"

बलाघात युक्त उच्चारण बोल्ड फॉन्ट में है।

अब इसे हिंदी में लिखेंगे।

ब्राइट स्टार = गुरु, लघु, लघु; गुरु लघु।

तो जो अंग्रेजी में 2 सिलेबल है वो हिंदी में 5 अक्षर = 7 मात्रा है।

इसीलिए, एक भाषा का छंद सामान्यतया दूसरी भाषा में उसी छंद में अनुवाद नहीं हो पाता है। अंग्रेजी छंद वकमए मसमहलए इंससंकए ब्ंतवस इत्यादि बीसियों छंद हैं जो हिंदी में प्रयुक्त नहीं होते हैं, उसी तरह हिंदी के पचासों छंद हैं जो अंग्रेजी में प्रयुक्त नहीं होते।

पूरी कविता परिशिष्ट में है।

सॉनेट का उदाहरण

Bright star, would I were stedfast as thou art
Not in lone splendour hung aloft the night
And watching, with eternal lids apart,
Like nature's patient, sleepless Eremite,
The moving waters at their priestlike task
Of pure ablution round earth's human shores,
Or gazing on the new soft & fallen mask
Of snow upon the mountains and the moors &

8 लाइन पूरी

No - yet still stedfast, still unchangeable,
Pillow'd upon my fair love's ripening breast,
To feel for ever its soft fall and swell,
Awake for ever in a sweet unrest,
Still, still to hear her tender&taken breath,
And so live ever&or else swoon to death-in
By John Keats

5.3 हाइकु छंद

हाइकु हिंदी काव्य का नवीनतम छंद है। इसमें तीन चरण या पद होते हैं। पहले चरण में पाँच वर्ण, दूसरे में सात वर्ण एवं तीसरे में पाँच वर्ण होते हैं। इस तरह तीनों चरणों में कुल सत्र्ह वर्ण (स्वर या स्वर युद्र व्यंजन) होते हैं। स्वर रहित व्यंजन (हलन्त) की गिनती नहीं की जाती, जैसे सत्कार में

टिप्पणी

त् की गणना नहीं की जाएगी। इस शब्द में स, का और र की ही गणना की जाएगी। इस गणना में लघुधदीर्घ मात्रएँ समान रूप से गिनी जाती हैं अर्थात् सत्कार में 1+ 1 + 1 = 3 वर्ण ही माने जाएंगे।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि हिन्दी साहित्य और भारतीय कला जगत रचनात्मकता के लिए सीमा के किसी बंधन को नहीं मानता। भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही प्रवासियों द्वारा कला के विभिन्न स्वरूपों को आत्मसात् किया गया है।

1. हिन्दी साहित्य की अनेकानेक विधओं में से एक नवीनतम विध है हाइकु। हालांकि यह विधा लगभग एक शताब्दी पूर्व सन् 1919 में कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के द्वारा अपनी जापान यात्र से लौटने के पश्चात् उनके 'जापान यात्री' में प्रसि) जापानी हाइकु कवि मात्सुआ बाशो की हाइकु कविताओं के बांग्ला भाषा में अनुवाद के रूप में सर्वप्रथम हिन्दुस्तानी ध रती पर अवतरित हुईय परन्तु इतने पहले आने के बावजूद लम्बे समय तक यह साहित्यिक विधा हिन्दुस्तानी साहित्यिक जगत् में अपनी कोई विशेष पहचान नहीं बना सकी। इस प्रकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर के द्वारा जापानी हाइकु कविताओं के बांग्ला भाषा में अनुवाद के माधयम से भारतीय साहित्य उर्वरा भूमि में हाइकु का बीजारोपण तो हो गयाय परन्तु इस बीज के अंकुरित होकर विकसित होने के लिए जिस अनुकूल वातावरण की आवश्यकता थी, वह श्रद्धेय अज्ञेय के माधयम से मिला।
2. हिन्दी भाषा में हाइकु की प्रथम चर्चा का श्रेय अज्ञेय को दिया जाता है, उन्होंने छठे दशक गण (1960) में अरी ओ करूणा प्रभामय (1959) में अनेक हाइकुनुमा छोटी कविताएँ लिखी हैंय जो हाइकु के बहुत निकट हैं। जिन पर अब भी लगातार शोध जारी है। कारद्ध
3. प्रोद्द डद्धद्द सत्यभूषण वर्मा ने हिन्दी साहित्य संसार को सबसे पहले हाइकु से परिचित कराया तथा जना अन्तर्देशीय पत्र प्रकाशित कर हाइकु को चर्चित किया। क
4. वर्तमान में संसार भर में फैले हिंदुस्तानियों की इन्टरनेट पर फैली रचनाओं के माधयम से यह विधा हिन्दुस्तानी कविता-जगत में ही नहीं वरन् विभिन्न देशों में हिन्दी काव्य-जगत में प्रमुखता से अपना स्थान बना रही है।

इस विधा का काव्य अनुशासन

कुछ लोग इस विधा की तुलना हिन्दी काव्य विधा त्रिवेणी से करते हैं। हाइकु और त्रिवेणी में केवल इतनी समानता है कि दोनों में केवल तीन पंद्रियाँ होती हैं। तीन पंद्रियों के साम्य के अतिरिद्र इन दोनों विधाओं में अन्य कोई साम्य नहीं है। इस जापानी विधा को हिन्दी काव्य जगत के अनुशासन से परिचित कराते हुए डा. जगदीश व्योम ने बताया है

1. हाइकु सत्रह (17) वर्गों में लिखी जाने वाली सबसे छोटी कविता है। इसमें तीन पंद्रियाँ रहती हैं। प्रथम पंद्रि में 5 वर्ण दूसरी में 7 और तीसरी में 5 वर्ण रहते हैं।
2. संयुद्र वर्ण भी एक ही वर्ण गिना जाता है, जैसे द्धसुगन्धद्धऋ शब्द में तीन वर्ण हैं-(सु-1, ग-1, न्ध-1)। तीनों वाक्य अलग-अलग होने चाहिए। अर्थात् एक ही वाक्य को 5, 7, 5 के क्रम में तोड़कर नहीं लिखना है। बल्कि तीन पूर्ण पंद्रियाँ हों।
3. अनेक हाइकुकार एक ही वाक्य को 5-7-5 वर्ण क्रम में तोड़कर कुछ भी लिख देते हैं और उसे हाइकु कहने लगते हैं। यह सरासर गलत है, और हाइकु के नाम पर स्वयं को छलावे में रखना मात्र हैं।

टिप्पणी

4. हाइक कविता में 5-7-5 का अनुशासन तो रखना ही है, क्योंकि यह नियम शिथिल कर देने से छंद की ख्रष्टि से अराजकता की स्थिति आ जाएगी।
5. इस संबंध में डा. व्योम जी का मानना है कि हिन्दी में अपनी बात कहने के लिये अनेक प्रकार के छंदों का प्रचलन हैय अतरू उपर्युद्र अनुशासन से भिन्न प्रकार से लिखी गई पंशितयों को हाइकु न कहकर मुद्र छंद अथवा क्षणिका ही कहना चाहिए।
6. वास्तव में हाइकु का मूल स्वरूप कम शब्दों में 'घाव करें गम्भीर' की कहावत को चरितार्थ करना ही है। अतरू शब्दों के अनुशासन से इतर लिखी गयी रचना को हाइकु कहकर सम्बोधित करना उसके मूल स्वरूप के साथ छेड़छाड़ ही कहा जाएगा।

प्रख्रति के भावप्रवण चित्रण हेतु हाइकु एक सशद्र विधा है।

हिन्दी में हाइकु रचने वालों की सूची

हिन्दी में हाइकु को गम्भीरता के साथ लेने वालों और हाइकुकारों की सूची में-प्रो. सत्यभूषण वर्मा, गोपालदास 'नीरज', शिव बहादुर सिंह भदौरिया, भगवत शरण अग्रवाल, सुधा गुप्ता, डा. शैल रस्तौगी, कमलेश भट्ट 'कमल', जगदीश व्योम, रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', कुँअर बेचौन, अंजली देवधर, कुँवर दिनेश, डा. उर्मिला अग्रवाल, कृष्ण शलभ, डा. रामनारायण पटेल 'राम', प्रो. आदित्य प्रताप सिंह, विद्या बिन्दु सिंह, राजेन जयपुरिया, पवन कुमार, भावना कुँअर, ऋतु पल्लवी, सरस्वती माथुर, सुभाष नीरव, रमा द्विवेदी, अशोक कुमार शुक्ला, रेखा रोहतगी, कमला निखुर्पा, जेन्नी शबनम, पारस दासोत, मोतीलाल जोतवाणी, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, नवल किशोर नवल, रचना श्रीवास्तव, अनिता ललित, ज्योत्स्ना शर्मा, अनुपमा त्रिपाठी, शशि पुरवार आदि नाम प्रमुख हैं। जिसमें से अनेक हाइकुकारों के हाइकु तथा अन्य रचनाएँ कविताकोश में भी उपलब्ध हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हाइकु

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इन्टरनेट के माधयम से हाइकु लिखने वालों में भावना कुँअर (ऑस्ट्रेलिया), पूर्णिमा वर्मन (संयुद्र अरब अमीरात), अनूप भार्गव, रचना श्रीवास्तव, शशि पाधा, सुधा ओम ढींगरा, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, सारिका सक्सेना (य.एस.ए.), जैनन प्रसाद (फिजी), शकुन्तला तलवार (यू.एस.ए.), प्रोद्द अश्विन गांधी (अमेरिका), अमिता कौण्डल, हरदीप कौर सन्धु, हरिहर झा (ऑस्ट्रेलिया), स्वाति भालोटिया (इंग्लैण्ड), रजनी भार्गव (अमेरिका), रेखा राजवंशी (ऑस्ट्रेलिया) आदि नाम प्रमुख हैं।

5.4 नवगीत

नवगीत, हिन्दी काव्य-धारा की एक नवीन विधा है। इसकी प्रेरणा सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई और लोकगीतों की समृ) भारतीय परम्परा से है। हिंदी में तो वैसे महादेवी वर्मा, निराला, बच्चन, सुमन, गोपाल सिंह नेपाली आदि कवियों ने कफी सुंदर गीत लिखे हैं और गीत लेखन की धारा भले ही कम रही है पर कभी भी पूरी तरह रुकी नहीं है। वैसे रूढ़ अर्थ में नवगीत की औपचारिक शुरुआत नयी कविता के दौर में उसके समानांतर मानी जाती है। 'नवगीत' एक यौगिक शब्द है जिसमें नव (नयी कविता) और गीत (गीत विधा) का समावेश है।

गीत और नवगीत में अन्तर -

गीत और नवगीत में काल (समय) का अन्तर है। आस्वादन के स्तर पर दोनों को विभाजित किया जा सकता है। जैसे आज हम कोई छायावादी गीत रचें तो उसे आज का नहीं मानना चाहिए। उस गीत को छायावादी गीत ही कहा जाएगा। इसी प्रकार निराला के बहुत सारे गीत, नवगीत हैं, जबकि वे

टिप्पणी

नवगीत की स्थापना के पहले के हैं। दूसरा अन्तर दोनों में रूपाकार का है। नवगीत तक आते-आते कई वर्जनाएँ टूट गईं। नवगीत में कथ्य के स्तर पर रूपाकार बदला जा सकता है। रूपाकार बदलने में लय महत्वपूर्ण 'फण्डा' है। जबकि गीत का छंद प्रमुख रूपाकार है। तीसरा अन्तर कथ्य और उसकी भाषा का है। नवगीत के कथ्य में समय सापेक्षता है। वह अपने समय की हर चुनौती को स्वीकार करता है। गीत की आत्मा व्यद्रि केन्द्रित है, जबकि नवगीत की आत्मा समग्रता में है। भाषा के स्तर पर नवगीत छायावादी शब्दों से परहेज करता दिखाई देता है। समय के जटिल यथार्थ आदि की वजह से वह छंद को गढ़ने में लय और गेयता को ज्यादा महत्व देता है।

नवगीत क्या है?

1. नवगीत में एक मुखड़ा और दो या तीन अंतरे होने चाहिये।
2. अंतरे की अंतिम पंद्रि मुखड़े की पंद्रि के समान द्धतुकांतऋ हो जिससे अंतरे के बाद मुखड़े की पंद्रि को दोहराया जा सके।
3. नवगीत में छंद से संबंधित कोई विशेष नियम नहीं है मगर पंद्रियों में मात्रएँ संतुलित रहे जिससे गेयता और लय में रुकावट न पड़े।

नवगीत कैसे लिखें

नवगीत लिखते समय इन बातों का धयान रखें

1. संस्कृति व लोकतत्व का समावेश हो।
2. तकान्त की जगह लयात्मकता को प्रमखता दें।
3. नए प्रतीक व नए बिम्बों का प्रयोग करें।
4. दृष्टिकोण वैज्ञानिकता लिए हो।
5. सकारात्मक सोच हो।
6. बात कहने का ढंग कुछ नया हो और जो कुछ कहें उसे प्रभावशाली ढंग से कहें।
7. शब्द-भंडार जितना अधिक होगा नवगीत उतना अच्छा लिख सकेंगे।
8. नवगीत को छंद के बंधन से मुद्र रखा गया है परंतु लयात्मकता की पायल उसका शृंगार है, इसलिए लय को अवश्य धयान में रखकर लिखे और उस लय का पूरे नवगीत में निर्वाह करें।
9. नवगीत लिखने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि प्रख्रति का सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण करें और जब स्वयं को प्रख्रति का एक अंग मान लेंगे तो लिखना सहज हो जाएगा।

नवगीत के गुण

1. नवगीत के 2 हिस्से होते हैं-1. मुखड़ा, 2. अंतरा।
2. मुखड़ा की पंद्रि संख्या या पंद्रि में वर्ण या मात्र संख्या का कोई बंधन नहीं होता पर मुखड़े की प्रथम या अंतिम एक पंद्रि के समान पदभार की पंद्रि अंतरे के अंत में आवश्यक है ताकि उसके बाद मुखड़े को दोहराया जा सके तो निरंतरता की प्रतीति हो।
3. सामान्यतरू 2 या 3 अंतरे होते हैं। अन्तरा सामान्यत: स्वतंत्र होता है पर पूर्व या पश्चातवर्ती अंतरे से सम्ब) नहीं होता। अंतरे में पंद्रि या पंद्रियों में वर्ण या मात्र का कोई बंधन नहीं

होता किन्तु अंतरे की पंद्रियों में एक लय का होना तथा वही लय हर अन्तरे में दोहराई जाना आवश्यक है।

4. नवगीत में विषय, रस, भाव आदि का कोई बंधन नहीं होता।
5. संक्षिप्तता, लाक्षणिकता, मार्मिकता, बेधकता, स्पष्टता, सामयिकता, सहजता-सरलता नवगीत के गुण या विशेषतायें हैं।
6. नवगीत की भाषा में देशज शब्दों के प्रयोग से उपज टटकापन या अन्य भाषिक शब्द विशिष्टता मान्य है, जबकि लेख, निबंध में इसे दोष कहा जाता है।
7. नवगीत की भाषा सांकेतिक होती है, गीत में विस्तार होता है।
8. नवगीत में आम आदमी की या सार्वजनिक भावनाओं को अभिव्यद्रि दी जाती है जबकि गीत में गीतकार अपनी व्यद्रिगत अनुभूतियों को शब्दित करता है।
9. नवगीत में अप्रचलित छंद या नए छंद को विशेषता कहा जाता है। छंद मुद्रता भी स्वीकार्य है पर छंदहीनता नहीं।
10. नवगीत में अलंकारों की वहीं तक स्वीकार्यता है जहाँ तक वे कथ्य की स्पष्ट-सहज अभिव्यद्रि में बाधक न हों।
11. नवगीत में प्रतीक, बिम्ब तथा रूपक भी कथ्य के सहायक के रूप में ही होते हैं। सारत: हर नवगीत अपने आप में पूर्ण तथा गीत होता है पर हर गीत नवगीत नहीं होता। नवगीत का अपरिहार्य गुण उसका गेय होना है।

मात्राओं की गणना

कविता या गीत को उच्चारण करने में लगने वाले समय के माप की इकाई को मात्र कहते हैं। इसकी गणना करना अत्यन्त सरल है। ह्रस्व स्वर 1 मात्र जैसे अ, इ, उ, । दीर्घ स्वर एवं संयुद्र स्वर 2 मात्र जैसे आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ। व्यंजन यदि स्वर से जुड़ा है तो उसकी अलग कोई मात्र नहीं गिनी जाती परन्तु दो स्वरों के बीच में यदि दो व्यंजन आते हैं तो व्यंजन की भी एक मात्र गिनी जाती है। जैसे सब = 2 मात्र और शब्द = 3 मात्र। इसी प्रकार शिल्प, कल्प, अन्य, धन्य, मन्त्र आदि सभी 3 मात्र वाले शब्द हैं। यहाँ धयान रखने योग्य है कि यदि दो व्यंजन सबसे पहले आकर स्वर से मिलते हैं तो स्वर की ही मात्र गिनी जायेगी, जैसे त्रिशूल = 4, त्रि= 1, शू= 2, ल = 1, क्षमा = 3, क्षम्य = 3, क्षत्रणी = 5, शत्रु= 3, चंचल = 4, न्यून = 3, सज्जा = 4, सत्य = 3, सदा=3, सादा = 4, जैसे = 4, कौआ = 4 आदि उदाहरणों से समझना चाहिये।

प्रमुख नवगीतकारा

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, शान्ति सुमन, माहेश्वर तिवारी, सुभाष वशिष्ठ, कुमार रवीन्द्र।

नवगीत का मुद्रछंद

नवगीत में छंद का बंधन नहीं है। लेकिन इसमें छंद होता है। यहाँ दो शब्दों का अर्थ ठीक से समझ लेना चाहिए-छंदमुद्र और मुद्रछंद।

1. छंदमुद्र का अर्थ है जिसमें छंद की उपस्थिति ही न हो। जैसे नई कविता में पंद्रियाँ बदलते

टिप्पणी

हुए इच्छानुसार अपनी भावनाओं के अनुसार आगे बढ़ते जाते हैं।

2. मुद्रछंद-जिसमें छंद तो है पर छंद कैसा रखना चाहते हैं उसकी स्वतंत्रा है।

नवगीत मुद्र छंद वाली रचना है। इसमें पारंपरिक छंदों का प्रयोग नहीं करते हैं। छंद नया बनाने के लिए यह भी जरूरी है कि छंद और मात्रओं की जानकारी हो। मात्रएँ कैसे गिनी जाती हैं यह शास्त्री जी ने दाहिने स्तंभ में नीचे बताया है। उसको धयान से पढ़ लेना चाहिए। किस पंद्रि में कितनी मात्रएँ रखी जाएँ यह कवि को ही निश्चित करना होता है। स्थाई में कितनी मात्रएँ हों, अंतरे में कितनी मात्रएँ हों और अंतरे की अंतिम पंद्रि का कैसा स्वरूप हो जो वह स्थाई के साथ ठीक से जुड़ सके यह कवि को खुद निश्चित करना होता है। उदाहरण के लिए सुप्रसि) नवगीतकार नईम का एक गीत है

चिटठी पत्री खतो किताबत के मौसम फिर कब आएंगे?

रब्बा जाने, सही इबादत के मौसम फिर कब आएंगे?

चेहरे झुलस गये कौमों के लू लपटों में

गंध चिरायंध की आती छपती रपटों में

युदक्षेत्र से क्या कम है यह मुल्क हमारा

इससे बदतर किसी कयामत के मौसम फिर कब आएंगे?

इसमें देखें कि स्थाई दो पंद्रियों का बनाया गया है। दोनों की मात्रएँ समान हैं। अंतरा फिर दो पंद्रियों का है दोनों पंद्रियाँ स्थाई से कफी छोटी हैं। तीसरी पंद्रि अंतरे की पंद्रि के समान मात्रओं वाली है लेकिन उसमें तक नहीं रखी गई है जबकि अंतिम पंद्रि को स्थाई के बराबर रखा गया है ताकि पहली पंद्रि के साथ आसानी से घुल जाए। यह पूरी तरह से एक नया छंद है।

इस प्रकार अनगिनत छंद बनाए जा सकते हैं और उनको सुविधानुसार पंद्रियों में बाँटा जा सकता है। उदाहरण के लिए इस गीत को इस प्रकार भी लिखा जा सकता है -

चिटठी पत्री

खतो किताबत के मौसम

फिर कब आएंगे?

रब्बा जाने,

सही इबादत के मौसम

फिर कब आएंगे?

चेहरे झुलस गये कौमों के लू लपटों में

गंध चिरायंध की आती छपती रपटों में

युद्धक्षेत्र से क्या कम है यह मुल्क हमारा

इससे बदतर किसी कयामत के मौसम

फिर कब आएंगे?

क्योंकि आजकल पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन छोटे-छोटे कॉलम में किया जाता है इसलिए पंद्रियाँ छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट देना अच्छा रहता है। यह तो हुई बात कि नया छंद कैसे बनता है और कैसे

लिखा जाता है पर इसके साथ-साथ एक बात और भी जाननी चाहिए कि जब हमने एक स्थाई और एक अंतरा बना लिया तो पूरी रचना में उसी छंद का पालन होना चाहिए। तभी गीत में लय सध सकेगी। यह नहीं कि छंद की स्वतंत्रा है तो पहला अंतरा अलग छंद में और दूसरा अंतरा अलग छंद में। जो छंद एक बार बनाया गया है पूरे नवगीत में उसका पालन करना जरूरी है। उदाहरण के लिए इसी गीत का दूसरा अंतरा देखें-

ब्याह सगाई बिछोह मिलन के अवसर चुके

फसलें चरे जा रहे पशु हम मात्र बिजूके

लगा अंगूठा कटवा बैठे नाम खेत से

जीने से भी

बड़ी शहादत के मौसम

फिर कब आएंगे?

धयान से देखें तो पाएंगे कि दूसरे अंतरे में पहले अंतरे के सभी नियमों का पालन किया गया है।

इससे पता चलता है कि नवगीत में हम मात्रओं, तुकों और विभिन्न भाषाओं के शब्दों के प्रयोग सभी के विषय में स्वतंत्रा प्राप्त करते हैं। लेकिन स्वतंत्रता का अर्थ ठीक से पता होना चाहिए। स्वतंत्रता का अर्थ स्व-तंत्र-ता अर्थात् अपने द्वारा बनाए गए तंत्र का पालन करना है न कि दिशाहीन होकर उच्छृखल आचरण करना। इसलिए नवगीत के गीतकार को छंद तुक शब्दों के प्रयोग के सभी नियमों को ठीक से समझकर अपना नया रास्ता चुनना होता है।

गौतम राजरिशी ने एक बार पूछा था कि क्या गजल की तरह नवगीत में मात्रएँ गिराने की छूट है बाद में संजीव गौतम ने भी वह सवाल दोहराया था। गजल में भी किसी विशेष स्थान पर, किसी विशेष भाव को व्यद्र करने के लिए, लय खराब न करते हुए मात्र गिराने की छूट होती है। उसी प्रकार नवगीत में भी सौंदर्य के लिए मात्र घटाई या बढ़ाई जा सकती है। ऊपर के गीत में हम देखेंगे कि-ब्याह सगाई बिछोह मिलन के अवसर

चुके - में बिछोह को बिछह पढ़ना पड़ रहा है। या बिछोह के छो के जल्दी से लघुरूप में पढ़ना पड़ता है। इसके स्थान पर विरह मिलन भी लिखा जा सकता था पर पूरे गीत में जैसा ग्रामीण परिवेश रचा गया है उसको देखते हुए शायद कवि ने बिछोह लिखा। अगर बिछह लिखते तो पढ़ने वाले के लिए अर्थ स्पष्ट न होता।

5.5 छन्द-शास्त्र की परिभाषाएँ

छोटी-बड़ी धवनियों का तोल-माप में बराबर होना छान्दस रचना का मूल आधार है। धवनियों को बराबर करने के विशेष नियम हैं। इन नियमों में बँधी हुई धवनियाँ ही लय उत्पन्न कर सकती हैं और इन्हीं नियमों में आब) रचना को छन्द कहते हैं। धवनि-सन्तुलन-व्यवस्था के इन्हीं विशेष नियमों को छन्द शास्त्र की परिभाषाएँ कहते हैं। इस शास्त्र को समझने के लिए इनका परिज्ञान अत्यन्त उपयोगी है। इन्हें जाने बिना छन्द शास्त्र में न प्रवेश हो सकता है, न गति। छन्द के जिज्ञासु को इन्हें भली प्रकार बुद्धिस्थ कर लेना चाहिए।

प्रारम्भ से ही मानव अपने मनोभावों की अभिव्यद्रि के लिए प्रधानतया तीन शैलियों को प्रयोग करता । आया है-गद्य, पद्य और गीत। सीधी और खुली भाषा को गद्य कहते हैं। नियमित एवं सन्तुलित पादब)

टिप्पणी

रचना । का पद्य तथा गाई जाने वाली भाषा को गीत कहते हैं। पद्य या पादब) को ही छन्द कहा जाता है। अतरू छन्द के ज्ञान के लिए सबसे पहले 'पाद' को समझ लेना बहुत आवश्यक है।

पाद का लक्षण - पाद छन्द की उस इकाई का नाम है जिसमें अनेक छोटी-बड़ी धवनियों का सन्तुलन किया जाता है। यह एक प्रकार के छन्द का 'सन्तुलित खण्ड' है, जिसके आधार पर शेष खण्डों का निर्माण किया जाता है। पाद ही वस्तुत: छन्द की योनि है जिसमें छन्द का लक्षण चरितार्थ होता है। पाद में चरितार्थ लक्षण ही प्रायरू छन्द का लक्षण होता है। पाद के लक्षण की भिन्नता के कारण ही छन्द की भिन्नता मानी जाती है। जिस प्रकार साँचे में ढली हुई ईंटें एक आकार-प्रकार की बन जाती हैं, उसी प्रकार पाद भी एक साँचा है । जिसमें सन्तुलित हुई धवनियाँ एक आकार-प्रकार और एक तोल-माप की बन जाती हैं। इस आधार पर छन्द-शास्त्र में पाद एक अत्यन्त महत्वपूर्ण इकाई है, जिसकी बनावट को समझने-समझाने के लिए ही शेष छान्दस-परिभाषाओं की सृष्टि हुई है। ।

साधारणतया छन्द के चार पाद होते हैं। कही-कही एक, दो, तीन, पाँच, छरू या इससे भी अधिक पाद हो जाते हैं। किसी छन्द के चाहे जितने भी पाद हो, इसका योनिभूत खण्ड ही पाद कहलाता है। खड़े होने के आधार को ही पाद या पाँव कहते हैं - फिर चाहे किसी के दो पैर हो (यथा मनुष्य) या चार (जैसे गौ आदि) या छ: द्धयथा भ्रमर आदिऋ इत्यादि। इसी प्रकार छन्द की स्थिति के आधारभूत अंश को ही पाद कहा जाता है। पद और चरण आदि पाद के ही नामान्तर हैं।

धवनि का स्वरूप - विशेष प्रकार से सन्तुलित धवनि-समूह को ही पाद कहते हैं यह ऊपर बताया गया है। अब धवनि के स्वरूप को भी समझ लेना चाहिए। जैसे छन्द के तोल की सबसे छोटी इकाई 'पाद' है, वैसे ही पाद की सबसे छोटी इकाई को 'धवनि' कहते हैं। धवनि, आमतौर पर, 'आवाज' (या Sound) को कहा जाता है। छन्द शास्त्र में 'एक काल में उच्चरित स्वर' को धवनि माना जाता है। छन्दों की व्यवस्था के लिए धवनि के दो रूप माने गए हैं-अक्षर या वर्ण (Syllables) और मात्र (Quantity)। धवनि के इन दो रूपों के आधार पर ही धवनि-सन्तुलन-व्यवस्था के भी दो रूप हो गए हैं। कही वर्गों के अनुसार और कही मात्रओं के अनुसार पाद बनाये जाते हैं। अतरू वर्णों और मात्रओं की परिभाषा को भी समझ लेना चाहिए।

वर्ण का लक्षण-एक स्वर वाली धवनि को वर्ण कहते हैं, फिर चाहे वह स्वर ह्रस्व हो या दीर्घ। इस हिसाब से 'अ' और 'आ' छन्द-शास्त्र में एक-एक वर्ण माने जाते हैं। यद्यपि 'अ' के उच्चारण से 'आ' के उच्चारण में काल और लम्बाई की मात्रा दुगुनी है, तथापि वर्ण-संख्या में ये दोनों ही एक-एक वर्ण माने जाते हैं। साथ ही वर्ण-संख्या में स्वर के साथ मिले हुए व्यंजनों पर भी विचार नहीं किया जाता। इसके अनुसार 'क', 'क्र', 'का', 'क्या', 'क्यों', 'क्रया' आदि सभी एक-एक वर्ण गिने जाते हैं, यद्यपि इनके साथ एक से अधिक व्यंजन भी मिले हुए हैं। इस प्रकार वर्ण की परिभाषा यही है कि ह्रस्व-दीर्घ आदि मात्राओं और साथ जुड़े हुए व्यंजनों के विचार के बिना एक स्वर वाली धवनि को वर्ण कहते हैं।

मात्रा का लक्षण - किसी धवनि के उच्चारण में जो काल लगता है उसकी सबसे छोटी इकाई को मात्रा कहते हैं। जैसे 'अ' के उच्चारण की अपेक्षा 'आ' के उच्चारण में दुगुना समय लगता है। इससे समय के आधार पर 'अ' मात्रा है, परन्तु 'आ' को हम दो मात्राएँ गिनते हैं। इस हिसाब से सारे ही ह्रस्व स्वरों की एक मात्रा होती है और दीर्घ स्वरों की दो-दो मात्राएँ मानी जाती हैं। मात्राओं की गिनती में भी व्यूजनों को नहीं गिनते, स्वरों की ही मात्राएँ गिनी जाती हैं। जैसे अ, फ, क्र, क्रय आदि सभी एक-एक मात्राएँ हैं। आ, का, क्या, प्या, आदि सभी की दो-दो मात्राएँ हैं। 'राजा' में चार और 'ज्ञान' में तीन मात्राएँ हैं।

टिप्पणी

वर्णों और मात्राओं की गिनती में स्थूल भेद यही है कि वर्ण सस्वर अक्षर को और मात्रा केवल]स्व स्वर को कहते हैं। हल् व्यंजनों की गिनती न वर्गों में की जाती है और न मात्राओं में ही। श्रीमान' और 'महान' में वर्ण तो दो-दो हैं, पर मात्राएँ क्रमशरू चार और तीन हैं।

इसी प्रकार,

'अनुजबधू भगिनी सुतनारी'

इस पाद में वर्ण तो 12 हैं परन्तु मात्राएँ 16 हैं। छन्द के विद्यार्थियों को वर्ण और मात्रा गिनने का विशेष अभ्यास कर लेना चाहिए।

लघु और गुरु का विचार - वर्णों और मात्राओं का आधार स्वर है। स्वर दो प्रकार के हैं ह्रस्व या लघु और दीर्घ या गुरु। इससे वर्णों और मात्राओं की गिनती के लिए पहले इन स्वरों की परिभाषा को भी समझ लेना चाहिए। छन्द शास्त्र में]स्व को लघु और दीर्घ को गुरु कहते हैं। छन्द शास्त्र में प्लुत को भी गुरु ही गिनते हैं। इनकी विशेष परिभाषा इस प्रकार है

लघु

(1) ह्रस्व स्वर और उनसे मिले हुए व्यंज्न (चाहे जितने भी हो) लघु कहे जाते हैं। अ, इ, उ, ; ये ह्रस्व स्वर हैं। यथा क, त्य, र्त्य, स्थ्य आदि सब लघु वर्ण हैं। 'क्रय' और कृषि में दोनों अक्षर लघु हैं। इसी प्रकार 'विकच कमल नयन' में सभी वर्ण लघु हैं।

(2)हिन्दी-छन्दों में अर्द्ध बिन्दु (ँ) वाले ह्रस्व स्वर भी लघु माने जाते हैं। जैसे 'विहँसि' में 'हँ' लघु है। इसी प्रकार 'सँग' में 'सँ' लघु है। (यदि 'विहसि' और 'सग' हो तो 'ह' और 'स' गुरु माने जायेंगे)

गुरु

(1)दीर्घ स्वर और उनसे मिले हुए व्यंजनों को भी गुरु कहते हैं। आ, ई, ऊ, ; ये दीर्घ स्वर हैं। राजा, क्या, दीदी, कूकू, स्थ्या आदि सभी गुरु वर्ण हैं।

(2)संयुक्त स्वर एवं तत्सम्बद्ध व्यंजनों को भी गुरु मानते हैं। ए, ऐ, ओ, औ ये संयुद्र स्वर हैं। जेते.. तेते, को, कौ, धौ आदि सभी गुरु हैं।

(3)अनुस्वार वाले सभी स्वर और तत्समयुद्र व्यंजन भी गुरु होते हैं। चंद्र में 'च', 'चाँद', में 'चा', 'इंद' में 'इ' और 'स्यो' आदि सब गुरु वर्ण हैं। अर्द्ध बिन्दु वाले दीर्घ और संयुद्र स्वर भी गुरु ही माने जाते हैं।

(4)विसर्गान्त सभी वर्ण गुरु होते हैं। दुःख में 'दु' और अतरू तथा 'विशेषतरू' में 'तरू' गुरु है।

(5)एक शब्द में किसी द्वित्व या संयुद्र अक्षर से पहले का लघु अक्षर भी यदि उस पर अधिक बल या भार पड़े तो - गुरु मान लिया जाता है। यथा 'कुत्ता' में 'कु' गुरु है। इसी प्रकार 'दुष्ट' में 'दु' और 'सत्य' में 'स' गुरु अक्षर हैं।

(क) इस सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से धयान में रखने योग्य है कि संस्कृत के समान हिन्दी में यह नियम 'पादव्यापी' नहीं है। हिन्दी में केवल 'एक शब्द' में ही संयुद्र पूर्व अक्षर गुरु माना जाता है। 'जब ते राम ब्याहि घर आए' (तुलसी) में संस्कृत की परिभाषा के अनुसार 'राम' का 'म' गुरु माना जायेगा। परन्तु हिन्दी में 'म' लघु ही गिना जाता है। इसी प्रकार 'अथ प्रजा' में 'थ' संस्कृत में गुरु है, परन्तु हिन्दी में वह लघु है।

टिप्पणी

(ख) समस्त पदों में भी विशेष बल के प्रभाव में संयुद्रादि वर्ण लघु ही रहता है। 'दु:खप्रद उभय बीच कछ बरना' द्धतलसीऋ में 'दरूख' का 'ख' लघ ही है। हाँ, जहाँ कही पढ़ने में बल दिया जाय, वहाँ वह गुरु भी हो सकता है। 'अगप्रभा' में 'ग' आवश्यकता के अनुसार 'लघु' और 'गुरु' दोनों ही माना जा सकता है। परन्तु साधारणतया हिन्दी के महाकवियों की रचना में समस्त पदों में 'संयुद्राद्य' गुरु का नियम लागू नहीं होता।

(6) कही-कही आवश्यकता के अनुरोध से पाद के अन्तिम लघु वर्ण को भी गुरु मान लिया जाता है। जैसे 'लीला तुम्हारी अति ही विचित्र '-इस पाद का अन्तिम लघु अक्षर 'त्र' गुरु है। इस त्र' को लयपूर्ति के लिए द्विगुणित काल से गुरु के समान करके पढ़ते हैं।

अपवाद या लघूधारण - उद्र लघु-गुरु के विवेचन में यह स्मरण रखना चाहिए कि लघु-गुरु को मानने का अन्तिम आधार कालमान या बलभार है। जिस अक्षर के उच्चारण में अधिक काल लगा दिया जाय या अधिक भार दे दिया जाय तो वह लघु भी गुरु हो जाता है। जैसे उद्र उदाहरण में 'त्र' को गुरु मान लिया जाता है। इसी प्रकार यदि काल कम लगाया जाय या भार कम दिया जाय तो गुरु वर्ण भी लघु गिना जाता है। संस्कृत के छन्दों में इस प्रकार की ढील नहीं है, परन्तु हिन्दी में यह सूक्ष्म भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। 'तुम्हारी' में 'तु' उद्र नियम 5 के अनुसार गुरु होना चाहिए और यदि यह कहीं संस्कृत छन्द में आ जाय तो अवश्य गुरु ही माना जाय। परन्तु हिन्दी में इसके उच्चारण में बल नहीं दिया जाता, इससे यह सदा लघु ही माना जाता है। इसी प्रकार 'कन्हैया' में 'क' भी बलाभाव के कारण लघु ही रहता है। इसी प्रकार 'जामवत के बचन सोहाये' में 'सो' को कम काल में पढ़ते हैं इससे यह लघु है। 'अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन-मन्दिर में बिहर' में 'के' भी लघु है। इस प्रकार के नियमानुसार गुरु' परन्तु वस्तुत: लघु वर्गों का लघूच्चारण किया जाता है।

साथ ही कवियों को यह स्वतन्त्रता है कि वे छन्द-शुद्धि के लिये शब्दों में अपेक्षित काँट-छाँट कर ले। जहाँ उन्हें लघु की आवश्यकता है वहाँ वे 'की' आदि गुरु वर्गों को 'कि' आनन्द' को 'आनंद' और 'जो' को 'जु', 'सो' को 'सु', 'ते' को 'ति' आदि करके लिख देते हैं। जहाँ गुरु की आवश्यकता हो वहाँ लघु को भी गुरु बना लेते है - 'दशरथ' को 'दशरत्थ' 'भरत' को 'भरत्थ' के आम प्रयोग तुलसी और केशव आदि महाकवियों की ख्रतियों में उपलब्ध होते हैं। 'दान' को 'दाना', 'रघुराय' को 'रघुराया', 'विज्ञान' को 'विज्ञानू' आदि के प्रयोग रामायण के पाठकों से अपरिचित नहीं हैं। इसी प्रकार 'विघ्न' को 'विघन', 'महान' को 'महान', 'सूर्य' को

'सूरज' आदि सब-कुछ छन्द के अनुरोध से कर लिया जाता है। कवियों का सिद्धान्त यह है कि भाषा भले ही बिगड़ जाय, परन्तु छन्द की लय न बिगड़ने पाये।

संख्या और क्रम - मात्रओं और वर्णों की गिनती को संख्या कहते हैं और कहाँ लघु वर्ण हो और कहाँ गुरु वर्ण हो-वर्गों के इस स्थिति-क्रम (Order of short and long syllables) को क्रम कहते हैं। संक्षेपत: किस छन्द में कितनी मात्रएँ या वर्ण हैं, यह उनकी 'संख्या' है और कहाँ लघु और कहाँ गुरु वर्ण है यह उनका क्रम है।

लघु-गुरु वर्गों की ठीक पहचान हो जाने पर और थोड़े-से अभ्यास से उनकी गिनती में अशुद्धि की कोई सम्भावना नहीं रह सकती। लघु की एक मात्र और गुरु की दो मात्रएँ गिनी जाती हैं। वर्णों की गिनती इससे भी सुगम है। इसमें स्वर सहित अक्षर का एक वर्ण गिना जाता है - अक्षर का स्वर चाहे ह्रस्व हो या दीर्घ, वह एक ही वर्ण रहेगा।

वदौं सत असज्जन चरण

इसमें मात्रएँ 16 हैं, पर वर्ण 11 ही हैं। इस प्रकार थोड़ा-सा अभ्यास कर लेने से छन्द के जिज्ञासु को अपेक्षित दक्षता प्राप्त हो जाती है।

गण या चिन्ह अक्षर - वर्गों के उद्र क्रम की प्रक्रिया को समझाने के लिए पिंगल आदि छन्द-आचार्यों ने गणों या चिन्ह-अक्षरों की कल्पना की है। ये चिन्ह-अक्षर एक प्रकार से बीजगणित के संकेत-अक्षरों के समान हैं, जहाँ प्रत्येक अक्षर एक विशेष परिभाषा को प्रकट करता है। छन्द-शास्त्र का प्रत्येक गण क्रम की तीनों अवस्थाओं-आदि, मधय और अन्तख्रको समझाने के लिए तीन-तीन अक्षरों की एक इकाई है। इससे पाद के सभी लघु-गुरु वर्गों का स्थान नियत हो जाता है और लक्षण बताने में भी सुगमता रहती है।

ये गण संख्या में आठ हैं म, न, भ, य, ज, र, स, त। इनके साथ ल (लघु) और ग (गुरु) मिलाने से कुल चिन्ह-अक्षर दस बन जाते हैं। इन गणों के लक्षण और स्वरूप भली प्रकार बुद्धिस्थ कर लेने चाहिए। सुगमता के लिए नीचे एक तालिका के द्वारा इनके लक्षण और स्वरूप बताए जाते हैं

5.6 पिंगल के दशाक्षर

चिन्ह-अक्षर	गण का नाम	स्वरूप	लक्षण	उदाहरण
म	मगणा	ऽऽऽ	तीनों गुरु वर्ण	माता का, सावित्रे, जाते हैं
न	नगण	।।।	तीनों लघु वर्ण	कमल, न कर
भ	भगण	ऽ।।	आदि वर्ण गुरु, पिछले दोनों लघु	बालक, आकर
य	यगण	।ऽऽ	आदि लघु, पिछले दोनों गुरू	पुराना, नहीं तो
ज	जगण	।ऽ।	मधय गुरु, आदि अन्त लघु	समाज, अभी न
र	रगणा	ऽ।ऽ	मधय लघु, आदि अन्त गुरु	बालिका, देख लो
स	सगणा	।।ऽ	अन्त लघु, आदि-मधय लघु	सरला सबसे
त	तगणा	ऽऽ।	अन्त लघु, आदि-मधय लघु	आकश, ले जाए
	ल, लघु	।		
	ग, गुरु	ऽ		

इन गणों के नाम और लक्षण स्मरण रखने के लिए यह दोहा बहुत उपयोगी है

आदि मधय अवसान में भ ज स सदा गुरु मान।
क्रम से होते य, र, त लघु म, न गुरु लघु जय जान॥

अर्थात् भ ज स क्रम से आदि गुरु, मधय गुरु और अन्त गुरु हैं

भगण = आदि गुरु ।।, जगण = मधय गुरु ।ऽ।, और सगण = अन्त गुरु ।।ऽ है। इसी प्रकार य, र, त क्रम से आदि लघु, मधय लघु और अन्त लघु है यगण, आदि लघु ।ऽऽ, रगण = मधय लघु, ऽ। ऽ और तगण = अन्त लघु ऽऽ। है। म और न क्रमशः सर्वगुरु और सर्वलघु हैं अर्थात् मगण = सर्वगुरु ऽऽऽ और नगण = सर्वलघु ।। है।

गणों का सूत्र 'यमाताराजभानसलगा' है।

टिप्पणी

इसके आधार पर गण उसकी वर्ण योजना, लघु-दीर्घ आदि की जानकारी आसानी से हो जाती है

गण का नाम	उदाहरण	मात्रा	
1.	यगण	यमाता	।ऽऽ
2.	मगण	म्तारा	।ऽऽ
3.	तगण	तराज	ऽऽ।
4.	रगण	राजभा	ऽ।ऽ
5.	जगण	जभान	।ऽ।
6.	नगण	नसल	।।।
7.	नगण	नसल	।।।
8.	सगण	सलगा	।।ऽ

यति-विराम या तनिक ठहरने (Pause) को यति कहते हैं। छोटे छन्दों में आमतौर पर यति पाद के अन्त में होती है। परन्तु बड़े छन्दों में, जहाँ एक पाद में इतने अधिक अक्षर हो कि एक साँस में उनका उच्चारण सुकर न हो, तो उनकी लय को ठीक रखने के लिए और उच्चारण की सुगमता के लिए एक पाद में ही एक, दो या तीन तक विराम रखे जाते हैं। जितना लंबा छन्दपाद होगा, उतने ही अधिक विराम अपेक्षित होते हैं। प्रारम्भ में 'सुकरता के अनुरोध से किया गया यह यति-विधान शनैः-शनैः छन्द के लक्षण का आवश्यक अंग बन गया। अनेक छन्द ऐसे हैं जिनमें यति-भेद छन्द-भेद का कारण माना गया है।

पिंगल और जयदेव के अनुसार यति छन्द-लक्षण का अनिवार्य अंग है। परन्तु भरत ने इसे ऐच्छिक माना है। पीछे के आचार्यों ने यति के सम्बन्ध में पिंगल का ही अनुसरण किया है और यति को छन्द-लक्षण का आवश्यक अंग माना है।

तुक - तुक का छन्द या धवनि-संतुलन से सीधा कोई सम्बन्ध नहीं। यह छन्द शास्त्र का विषय न होकर साहित्य-शास्त्र का विषय है। निःसन्देह 'धवनिसाम्य' के द्वारा यह छन्द में विशेष स्वारस्य पैदा करता है। वैदिक और संस्कृत के छन्दों में इसका प्रयोग नहीं मिलता। प्राकृत छन्दों में यह प्रयुद्र होने लग पड़ा था। अपभ्रंश छन्दों में इसका प्रयोग निरन्तर मिलता है। शायद प्राकृत और अपभ्रंश के अनुकरण पर ही जयदेव आदि एकाध कवि ने संस्कृत में भी तुक का प्रयोग किया है, परन्तु अपने खालिस रूप में यह अपभ्रंश की देन है। हिन्दी में तुक का प्रयोग आरम्भ से होता चला आ रहा है। पुराने सभी कवियों की वाणी में यह निरपवाद रूप से मिलता है। हाँ, आज के कतिपय स्वच्छन्द कवि 'अतुकी' या 'बेतुकी' कविता करने लगे हैं। निःसन्देह भावों और छन्द की दृष्टि से 'तुक' अनावश्यक होते हुए भी माधुरी और स्वास्थ्य का घटक अवश्य है।

हिन्दी के किसी लक्षणकार ने तुक को छन्द-लक्षण का भाग नहीं माना है। साहित्य-शास्त्र में 'अन्त्यानुप्रास' के नाम से इसकी गणना अलंकारों में की गई है।

हिन्दी-साहित्य में साधारणतया पाँच और चार मात्रओं का तुक मिलता है। कही-कही दो मात्रओं का भी प्रयोग हुआ है। तुक के मिलान में भी कई भेद प्रतीत होते हैं। कभी सभी पादों में एक ही तुक चलता है। इसे 'सर्वान्त्य' कह सकते हैं। कहीं पहले और तीसरे पाद का तुक मिलता है (दूसरा और चौथा पाद 'अतुक' ही रहते हैं जैसे सोरठा आदि में)। कहीं दूसरे और चौथे पाद का तुक मिलता है और पहला और तीसरा पाद 'अतुक' ही रहता है (जैसे दोहा आदि में)। कही पहले और तीसरे का

और तीसरे और चौथे का तुक मिलता है और कही पहले-तीसरे और दूसरे-चौथे पाद में तुक-साम्य होता है। इस प्रकार प्रयोग की दृष्टि से तुक अनेक प्रकार से व्यवहृत हुआ है। यह प्रधानतया कवि की इच्छा पर निर्भर है। इसे नियमों के बन्धन में जकड़ना कवि-स्वातन्त्र्य में अनावश्यक हस्ताक्षेप होगा।

गति - गीति-प्रवाह को 'गति' (रवानगी) कहते हैं। वर्णवृत्तों में इसकी कोई विशेष अपेक्षा नहीं रहती, कारण कि गीति-प्रवाह लघु-गुरु वर्गों के स्थिति-क्रम के नियत कर देने से ही पैदा हो जाता है। परन्तु मात्रिक छन्दों में इसकी ओर विशेष धयान देना पड़ता है।

संस्कृत के ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता, कारण कि संस्कृत में प्राय: वर्णवृत्तों की ही प्रधानता है। परन्तु हिन्दी के छन्द अधिकांशत: मात्र-छन्द हैं, जो प्राकृतों और अपभ्रंश से आए हैं। इनमें मात्रओं की संख्या ही छन्द का प्रधान लक्षण है। यह स्पष्ट है कि संख्या बराबर होने-मात्र से ही गीति-प्रवाह नहीं चलता। जैसे चौपाई की 16 मात्रएँ होती हैं। अब सोलह मात्रएँ निम्नलिखित पाद में भी मिल जाती हैं

जब सकोप लखन वचन बोले (16 मात्रएँ)

परन्तु इस पाद में 'रवानगी' नहीं है, इससे इसे चौपाई का पाद नहीं माना जा सकता। इसे ही यदि यों करके पढ़े तब गीति-प्रवाह ठीक रहता है।

लखन सकोप वचन जब बोले (तुलसी)

हिन्दी के छन्द-लेखकों ने इसके अभी कोई विशेष नियम निर्धारित नहीं किये। यह प्राय: अभ्यास और नाद के नियमों पर ही निर्भर है। हिन्दी-छन्दों के अधययन में इस और विशेष धयान अपेक्षित है।

लय - धवनि समस्त वाग् व्यवहार का मूल है। इसी को शब्द, नाद, वाक् आदि भी कहा जाता है। इसके दो भेद माने गये हैं-नादात्मिका और वर्णात्मिका। इनसे क्रमश: संगीत और काव्य का जन्म होता है। स्वर तत्व और काल तत्व, नाद के दो रूप हैं और जब इनमें से काल अनियमित होता है तो सामान्य व्यवहार कहलाता है और जब नियमित गति का रूप लेता है तो संगीत, ताल और छन्द को जन्म देता है। संगीत में वाक् तत्व स्वर के रूप में और काल तत्व लय, ताल के रूप में व्यद्र होता है। काव्य में यही क्रमशरू पद और छन्द में व्यक्त होता है। भरत ने अत्यंत व्यापक रूप में वाक् तत्व को शब्द और काल तत्व को छन्द कहा है।

छन्दहीनो न शब्दोस्ति नच्छन्द शब्दवर्जितम्।

अर्थात् कोई शब्द यानि धवनि छन्द रहित नहीं और न ही कोई छन्द शब्द रहित है क्योंकि धवनि काल के बिना व्यद्र नहीं होती और काल का ज्ञान धवनि के बिना सम्भव नहीं। चारों वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, संहिता ग्रन्थ आदि सभी छन्दोमय माने गये हैं। वैदिक और लौकिक संगीत, गंधर्व, मार्गी और देशी सभी में छन्दों का प्रयोग हुआ है। छन्दोब) होकर ही वेद की ;चाएँ सुरक्षित रह सकी हैं। 'छन्द प्रभाकर' पुस्तक में छन्द की परिभाषा इस प्रकार है

मत वरण यति गति नियम, अन्तहि समता बंद।
जा पद रचना मे मिले, भानू गनत सोई छन्द॥

छन्द उस वाक्य योजना को कहते हैं जो अक्षरों, मात्रओं और यति आदि के नियम विशेष के अनुसार लिखी गयी हो। संगीत के गायन-वादन में नित्य प्रति छन्दों का प्रयोग निरर्थक शब्दों के द्वारा भी होता है और यह आनंददायक भी होता है। तराना व तेनक निरर्थक शब्द की रचना है, जो किसी भी छन्द में बंधी हुई हो सकती हैं। सितार के श्रेष्ठ वादक अपने आघात मा॰ से ही कितने ही छंदों का प्रदर्शन करते हैं और उनकी यह ख्रति आकर्षक होती है। भारतीय संगीत के सम्बन्ध में कहा गया है कि श्रुति इसकी जननी और लय इसके जनक हैं। संगीत में श्रुति से अभिप्राय स्वर नलिका से न होकर उन

टिप्पणी

सूक्ष्मतम धवनि अंतरा से है जिनसे एक सप्तक बनता है। यही श्रुतियाँ संगीत के प्रति जननी का कार्य करती है। **सामान्यतः लय शब्द के दो अर्थ हैं-शाब्दिक और पारिभाषिक।** लय का स्पष्ट शाब्दिक अर्थ है-संयोग, एकरूपता, मिलन। जब किसी की आवाज किसी स्वर नलिका की धवनि से मिल जाती है तो हम कहते हैं कि गायक ने लय के साथ श्रुति पर भी अधिकार कर लिया है। जब हमारा मस्तिष्क किसी भी विचार में लीन हो जाता है तो हम कहते हैं कि वह लय की स्थिति में है। इस प्रकार लय शब्द का प्रयोग विभिन्न संदर्भो और अर्थों में किया जाता है। पारिभाषिक अर्थों में लय को तालों एवं काल माप का आधार माना जाता है। लय संगीत और काव्य में अपनी किंचित संगीतमयता के कारण माधुर्य और सरसता तो भावों के साथ लाती ही है साथ ही एक प्रवाह भक्ति और लोच भी उत्पन्न कर देता है।

तालस्तलप्रतिस्ठायमिति धातेजिस्मृतः।
गीतं, वाद्यं तथा नृतं यतस्ताले प्रतिष्ठितम।

गीत, वाद्य एवं नृत्य तीनों की प्रतिष्ठा ताल पर हुई है एवं प्रतिष्ठावाचक धातु रूप तल् से ताल शब्द की व्युत्पत्ति संगीत रत्नाकर में उद्धत् है। अखण्ड काल गति को छंद या पदों में विभाजित करने के जो प्रयोग हुए, उन्हें ही ताल कहा गया है। संगीत में स्वरों की गति यथार्थतरू छंद और ताल ही प्रदान करते हैं। ताल संगीत को एक निश्चित समय के बंधन में बाँधता है। ताल संगीत को अनुशासित कर उसके सुगठित रूप, स्थायित्व एवं चमत्कार से श्रोताओं को विभोर कर देता है। ताल के कारण ही प्राचीन एवं वर्तमान संगीत को स्वर लिपि एवं बोल लिपि द्वारा भविष्य के लिए सुरक्षित रखना सम्भव हुआ है। करुण, श्रृंगार, रौद्र, वीभत्स आदि रसों के लिए तालों की विभिन्न गतियों का बड़ा महत्व है। निश्चय ताल गति के फलस्वरूप ही संगीत के क्रमिक आरोह, अवरोह, विराम आदि अत्यंत प्रभावोत्पादक हो जाते है। विश्व विधाता द्वारा सर्जित समस्त प्रकृति में समय क्रम की जो निश्चित गति है, वही संगीत में ताल बनकर उसे उपयोगी रसपूर्ण और स्थायित्व स्वरूप प्रदान करती है। तीनों को पृथक् रूप में देखे तो पता चलता है कि ये तीनों पृथक् नहीं वरन् एक-दूसरे के पूरक हैं।

छंद-लय, लय-ताल, छंद-ताल ये तीनों ही आपस में एक-दूसरे से गुंथे हुए हैं और जिनकी आपसी उपस्थिति संगीत में अहम् स्थान रखती है। इसका आपसी सम्बन्ध वर्णन इस प्रकार है-छंद का मूल लक्षण लयबद्धता है। लय के बिना संगीत की सत्ता असम्भव है, छन्द भी निष्प्राण है। यही लय जब निश्चित स्वरूप में व्यद्र होती है तो छन्द की उत्पत्ति होती है। भले ही सार्थक शब्द हो या न हो तथा जो स्थान छन्द और लय का है वही स्थान संगीत में ताल का है। छन्द द्वारा काव्य का तथा ताल द्व ारा गेय का मान होता है। छंद भाषा को गति प्रदान करता है और स्वरों को गति प्रदान करने वाला तत्व ताल है और छंद के नियत अक्षर, नियत स्थान पर विराम बल, अबल के साथ उच्चारण, उसकी अन्तर्निहित लय को प्रकट करता है। छन्द और ताल दोनों काव्य और संगीत में मापन का कार्य तो करते ही हैं साथ ही वे काव्य और संगीत में लालित्य भी उत्पन्न करते हैं। यह कार्य इनमें अन्तर्निहित लय के द्वारा होता है।

छन्द-लय एक-दूसरे के पूरक हैं। भारतीय छन्द योजना ही अपने मूल में लयबंद्ध है। छन्दों के नियम इस प्रकार हैं कि वे स्वतः लय में उतरते आते हैं। संगीत का आधार भी लय है और लय के सहयोग से ताल में विभाजित करने के बाद ही गायक अथवा वादक के पदों या गतों को स्वरों में बाँधकर गाया जाता हैं। लय, ताल ही भारतीय संगीत का प्राण है। लय की समानता के कारण ही छन्दों में बँधी हुई कविता में जो माधुर्य तथा ओजमयी अनुभूति होती है वही रसानुभूति संगीत की ताल में भी प्रस्फुटित होती है।

टिप्पणी

संगीत में पद, स्वर, ताल, गति सभी के एकरूप को छन्द कहते हैं, जो पाद्य कहलाते हैं। पदों के छन्द और गति ताल में सहज अनुकूलता होती है। पदों में यदि स्वर योजना न की जाए तथा सही तरीके से न पढ़ा जाए तो उनमें ताल स्पष्ट दिखाई देता है, यही ताल, छन्द और लय का आपसी सामन्जस्य है।

5.7 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **ध्वनि के स्वरूप को संक्षेप में वर्णित कीजिए।**
2. **वर्ण के लक्षण बताइये।**
3. **मात्र के क्या लक्षण हैं?**
4. **गजल की तकनीक एवं संरचना को संक्षेप में बताइये।**
5. **सङ्कनेट छंद का संक्षिप्त विवरण दीजिए। काकीनाकामा**

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. **छन्द शास्त्र से आपका क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।**
2. **गण से आप क्या समझते हैं? गणों के प्रकारों का वर्णन कीजिए।**
3. **छंद के विभिन्न अंगों का विवरण दीजिए।**
4. **हाइकु छंद क्या है? इस विधा का काव्य अनुशासन लिखिए।**
5. **नवगीत छंद को विस्तारपूर्वक समझाइये।**

♦♦♦♦♦

टिप्पणी

टिप्पणी

टिप्पणी

References and Suggested Reading

lnHk iLrd

- ik'pkR; dk0;'kkL= &noUnukFk 'kekA
- ik'pkR; leh{kk d fl)kr &efFkyh i lkn Hkkj}kt A
- अज्ञेय - संपादक विद्या निवास मिश्र
- अज्ञेय -विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
- अज्ञेय साहित्य : प्रयोग और मूल्यांकन - डॉ. केदार शर्मा
- अज्ञेय का काव्य : एक पुनर्मूल्यांकन - शम्भुनाथ चतुर्वेदी
- अज्ञेय का कथा साहित्य - ओम प्रभाकर
- अज्ञेय के उपन्यास प्रकृति और प्रस्तुति- डॉ. केदार शर्मा
- शेखर एक जीवनी विविध आयाम- सम्पादक राम कमल राय
- शेखर : एक जीवनी महत्व -परमानन्द श्रीवास्तव
- शब्द पुरुष अज्ञेय -नरेश मेहता
- अज्ञेय का संसार: शब्द और सत्य : संपादक - अशोक वाजपेयी
- छायावाद का समाज शास्त्र, डॉ० शशि मुदीराज, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1988
- महादेवी के काव्य में लालित्य योजना, डॉ0 राधिका सिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र.सं. 1979
- महादेवी के काव्य में लालित्य विधान, डॉ० मनारेमा शर्मा, 1976
- साहित्य संस्थान, कानपुर प्र.सं. महादेवी संस्मरण ग्रंथ, (संपा.) पंत तथा शांति जोशी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र.सं. 1967 ।
- महादेवी वर्मा, शचीरानी गुर्टू आत्माराम एंड संस, दिल्ली, प्र.सं. 1970
- छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि, डॉ0 सुषमा पाल।
- हिंदी काव्य में प्रतीकवाद मंगल प्रकाशन, जयपुर
- छायावाद का सौंदर्य शास्त्रीय अध्ययन, डॉ० विमल, राजकमल प्रकाशन, पटना, 1977
- छायावाद का काव्य शिल्प, प्रतिमा कृष्ण बल, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1971

- महादेवी की कविता में सौंदर्य भावना, डॉ0 सी. तुलसम्मा, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1984 ।
- सुमित्रानंदन पंत : डॉ० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
- सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य (दो भाग) : शांति जोशी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- सुमित्रानंदन पंत : सं० शची रानी गुर्टू सुमित्रानंदन पंत कवि और काव्य: शारदा लाल, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।
- युग-कवि पंत की काव्य-साधना डॉ0 विनय कुमार हिंदी साहित्य का इतिहास, लेखक - आचार्य रामचंद्र शुक्ल ।

Internet links

https://www.youtube.com/watch?v=BOdOoZEVUIs

https://www.youtube.com/watch?v=17NyfchT5Uo

https://www.youtube.com/watch?v=l_MPFXNBvRE

https://www.youtube.com/watch?v=wYETH8Y07dg

https://www.youtube.com/watch?v=NamdFO_CSQg

https://www.youtube.com/watch?v=1vJirhoC0LU